# कुरुक्षेत्र

जुलाई 1994

तीन रुपये

## पंचायती राज का नवोदय

## सुनिश्चित रोजगार योजना का दायरा छब्बीस और ब्लाकों तक बढ़ाया गया

सुनिश्चित रोजगार योजना को छब्बीस और ब्लाकों तक बढ़ा दिया गया है। नये ब्लाक जम्मू और कश्मीर में 23, बिहार में एक और पश्चिम बंगाल में दो हैं।

सुनिश्चित रोजगार योजना अब देश के सूखा प्रधान क्षेत्रों, रेगिस्तानी इलाकों, जनजातीय और पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित 261 जिलों के उन 1778 चुने गए पिछड़े ब्लाकों में संचालित की जाएगी, जहां पुनर्गठित सार्वजनिक वितरण प्रणाली कार्य कर रही है।

राज्यों ने इस योजना के अंतर्गत 4 करोड़ 18 लाख मानव दिवसों के रोजगार सृजन की जानकारी दी है। मानव दिवस रोजगार सृजन की अधिकतम संख्या 62 लाख 42 हजार आंध्र प्रदेश में है। इसके बाद मध्य प्रदेश (51 लाख 26 हजार), राजस्थान (50 लाख) और पश्चिम बंगाल (49 लाख 39 हजार) का स्थान है। अभी तक 8,831 कार्य पूर्ण किए जा चुके हैं तथा अन्य 19, 110 कार्य प्रगति पर हैं।

अभी तक 16 राज्यों और तीन केन्द्र शासित प्रदेशों में 43 लाख से अधिक व्यक्तियों का सुनिश्चित रोजगार योजना के अंतर्गत पंजीयन किया जा चुका है। चालू वित्त वर्ष के दौरान केन्द्र द्वारा 634 करोड़ 96 लाख रुपये की राशि जारी की जा चुकी है। 1993-94 के दौरान कुल 437 करोड़ 95 लाख रुपये की सहायता उपलब्ध कराई गई थी। व्यय भार को केन्द्र और राज्य द्वारा 80:20 के आधार पर उठाया जाता है।

2 अक्तूबर, 1993 को प्रारंभ की गई सुनिश्चित रोजगार योजना 18 वर्ष से अधिक और 60 वर्ष से कम आयु वाले उन ग्रामीण पुरुषों और महिलाओं को जो काम करना चाहते हैं, 100 दिवसों का रोजगार उपलब्ध कराती है। यह योजना क्षेत्र में रह रहे सभी ग्रामीण लोगों के लिए खुली हुई है। कार्यक्रम के अंतर्गत प्रति परिवार अधिकतम दो वयस्कों को 100 दिवसों का रोजगार उपलब्ध कराया जाता है।

इस योजना का प्राथमिक उद्देश्य उन कृषि श्रमिकों और अन्य मजदूरों को रोजगार उपलब्ध कराना है जिन्हें रोजगार की तलाश है, किंतु वे उसे खेत पर या अन्य सहायक कार्यों में या कृषि का मौसम न होने पर सामान्य योजना/गैर-योजनागत कार्यों में ढूंढ नहीं पाते हैं। दूसरा उद्देश्य स्थायी रोजगार और विकास के लिए आर्थिक बुनियादी सुविधाओं और सामुदायिक परिसंपत्तियों का निर्माण करना है।

**साभार : पत्र सूचना कार्यालय**

# कुरुक्षेत्र

**ग्रामीण विकास मंत्रालय का प्रमुख मासिक**

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। लघु कथाओं का भी स्वागत है। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है। 'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

वर्ष 39 अंक 9 आषाढ़-श्रावण 1916, जुलाई 1994

| | | |
|---|---|---|
| कार्यकारी संपादक | : | बलदेव सिंह मदान |
| उप संपादक | : | ललिता जोशी |
| उप निदेशक (उत्पादन) | : | एस.एम. चहल |

| | | |
|---|---|---|
| विज्ञापन प्रबंधक | : | बैजनाथ राजभर |
| व्यापार व्यवस्थापक | : | जॉन नाग |
| व्यापार कार्यकारी | : | बी० एस० रावत |
| आवरण सज्जा | : | के० के० बर्मा |

एक प्रति : 3.00 रुपये वार्षिक चंदा : 30 रुपये

फोटो साभार : रमेश चंद्र, फोटो प्रभाग, ग्रामीण-विकास मंत्रालय


## इस अंक में


| | | |
|---|---|---|
| पंचायती राज : अगला कदम | डा० महीपाल | 3 |
| पंचायती राज : महिलाओं को राजनीतिक शक्ति | सुन्दर लाल कुकरेजा | 6 |
| पंचायती राज : जन और मातृ-शक्ति की प्रतिष्ठा | जितेन्द्र गुप्त | 9 |
| चुनौतीपूर्ण है पंचायती राज कायम करना | डा० कैलाश चन्द्र पपनै | 12 |
| पंचायती राज : एक सपना पूरा हुआ | सैयद सलमान हैदर | 15 |
| पंचायती राज की नई व्यवस्था | राम बिहारी विश्वकर्मा | 17 |
| जहां गांव वाले खुद ही अपने झगड़ों को निपटा लेते हैं | अशोक कुमार यादव | 19 |
| महातीर्थ (कहानी) | मोहन नायक | 21 |
| नशीली दवाओं का कुप्रभाव कैसे रोकें? | डा० गिरीश मिश्र | 23 |
| सबसे बड़ा संकट – पानी | डा० पुष्पेश पाण्डे | 26 |
| गरीबी उन्मूलन में बैंकों की भूमिका | डा० सवालिया बिहारी वर्मा | 29 |
| कैसे सफल हों ग्रामीण विकास परियोजनाएं | माई चन्द | 31 |
| बाढ़ और सूखे की विनाशलीला | राजीव रंजन वर्मा | 34 |
| भारतीय मरुस्थल का कल्पतरू : खेजड़ी | फारूक आफरीदी | 36 |
| आदिवासी अर्थव्यवस्था - विशेषताएं और समस्याएं | अधिकेश राय | 40 |
| ऊसर भूमि में भी मछली पालन संभव | डा० अमरेश चन्द्र पाण्डेय | 42 |



प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।



सम्पादकीय पत्र-व्यवहार सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

दूरभाष : 384888

# पाठकों के विचार

'कुरुक्षेत्र' अप्रैल 94 अंक में डा. आनंद तिवारी द्वारा लिखित 'ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की समस्याएं' नामक लेख ज्ञानवर्धक लगा। इसमें ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की समस्याओं पर खोजपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया गया, साथ ही साथ प्रभावी क्रियान्वयन हेतु तथ्यपूर्ण सुझाव भी दिये गये हैं।

'1994-95 का आम बजट और ग्रामीण विकास' का यह अंक हमारे कृषि-प्रधान देशं की अर्थ व्यवस्था की रीढ़ कृषि और कृपक भाइयों के लिये विशेषरूप से फायदेमंद साबित होगा। बकरी पालन, मधु मक्खी पालन, पशु पालन सहित 'बजट से झांकता, मुस्काता किसानी चेहरा' आदि लेख रोचक व सराहनीय हैं। सुश्री निभा कुमारी द्वारा लिखित कहानी 'प्यास' मर्मस्पर्शी व यथार्थपूर्ण लगी।

इस प्रकार विकास रूपी चक्र को गतिशीलता प्रदान करने और ग्रामीण विकास को नई दिशा देने में 'कुरुक्षेत्र' पत्रिका का यह प्रयास सराहनीय है।

**अर्चना दीक्षित,**
**163, बहादुरगंज, छोटी सब्जी मंडी,**
**शाहजहांपुर - 242001 (उ. प्र.)**

'कुरुक्षेत्र' का अप्रैल अंक प्राप्त हुआ। धन्यवाद! वस्तुतः भारत के 94-95 के बजट में ग्रामीण तथा कृषि से संबंधित सभी पहलुओं पर पर्याप्त जानकारी समाहित की गई है जो सारगर्भित और ज्ञानवर्द्धक लगी। उसे पढ़कर देश के बजट में ग्रामीण विकास और कृषि के लिए उठाए गए कदमों के बारे में पर्याप्त जानकारी मिली। सच पूछा जाए तो इस अंक का नाम 'ग्रामीण विकास बजट विशेषांक' रखा जाना चाहिए था।

इसके लिए निरूपम, रामबिहारी, सुभाष, सुनील भाई को ढेरों सारा धन्यवाद। साथ ही बकरी पालन, मधुमक्खी पालन, गर्मी में कम उम्र के पशुओं की व्यवस्था इत्यादि लेख भी काफी रोचक लगे। विदेशों में भारतीय दस्तकारी सामान की बढ़ती लोकप्रियता के बारे में भी जानकारी दिलचस्प लगी।

**डा. रजनी कान्त पाण्डेय,**
**उद्यान विभाग,**
**कुलभाष्कर आश्रम कृषि महाविद्यालय,**
**इलाहाबाद - 2111002**

'कुरुक्षेत्र' का मार्च अंक पढ़ने को मिला। यह अंक रोचक एवं आश्चर्यजनक प्रतीत हुआ। इसमें छपी "पर्यावरण पर अतिचारण के खतरे" पढ़कर दुःख हुआ क्योंकि हम सामान्य व्यक्ति इन गंभीर परिणामों से अनभिज्ञ थे। आपके द्वारा छापी गई यह रचना हम सब के लिए प्रकाश-पथ है। अगर इस तरह ही रचनाएं आप छापते रहें तो हम सामान्य नागरिक देश और समाज के हित में अनेक कार्य कर सकते हैं।

**आनन्द मोहन ठाकुर**
**रोसड़ा, प्रभु ठाकुर मुहल्ला, वार्ड नं. 5,**
**जिला - समस्तीपुर, बिहार**

'ग्रामीण विकास मंत्रालय' की मुख्य पत्रिका 'कुरुक्षेत्र' का मार्च, 94 अंक पढ़ा। प्रदूषण के बढ़ते संकट पर प्रकाशित लेख बड़े सटीक लगे। प्रदूषण निश्चित रूप से वर्तमान में भारत में ही नहीं, अपितु विश्व की एक प्रमुख समस्या के रूप में उभर कर आया है। आज प्रदूषण सारे जन-जीवन को प्रभावित कर रहा है। मनुष्य ही पर्यावरण को रचता और सजाता है, जबकि पर्यावरण मनुष्य को। दोनों का आपस में एक गहरा संबंध है। फलतः एक का विनाश दूसरे के विनाश का कारण बनता है। मानव ने अपने विकास के लिए नई-नई तकनीकों द्वारा प्रकृति का अधिकाधिक दोहन किया है। तीव्र गति से बढ़ती आबादी, औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण पर्यावरण में असंतुलन पैदा हो गया है। उद्योगों, पेट्रोल, डीजल से चलने वाली गाड़ियों आदि से निकले जहरीले धुंए वायु-प्रदूषण को निरंतर बढ़ा रहे हैं। कारखानों से निकला प्रदूषित जल तथा जहरीला अवशिष्ट नदियों एवं अन्य जल स्रोतों में पहुंचकर जल प्रदूषण को बढ़ावा दे रहे हैं जिससे जब यह जल उपभोग में लाते हैं तो बहुत सी बीमारियों को जन्म देती है। इस पर्यावरणीय विघटन के कारण अनेक समस्याएं उठ खड़ी हुई हैं। पत्रिका में प्रकाशित विभिन्न लेखों ने इस समस्या का बड़ा ही सटीक एवं सजीव चित्रण किया है। इससे पूर्व कि यह समस्या और विकराल रूप धारण करती जाए और मानव जीवन के अस्तित्व के लिए ही संकट उत्पन्न हो जाय, आज जरूरत है एक ऐसे दृढ़ संकल्प की जिससे इस समस्या से जूझकर अति शीघ्र मुक्ति प्राप्त की जाए।

**भास्कर देव त्रिपाठी**
**मुहम्मदाबाद - गोहना (मऊ) (उ. प्र.)**

**(शेष पृष्ठ 33 पर)**

# पंचायती राज : अगला कदम

✍ डा० महीपाल*

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत देश में पंचायती राज व्यवस्था लागू करने के लिए अनेक प्रयत्न किए गए। सामुदायिक विकास ार्यक्रम (1952) तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम सामुदायिक वेकास की दिशा में सरकार द्वारा आरंभ किए गए कार्यक्रम थे। ाकिन इन कार्यक्रमों में जनसमुदाय की सहभागिता का बिल्कुल भाव था। अतः विकेन्द्रीकृत शासन व विकास में लोगों की मुचित भागीदारी लाने के लिए भारत सरकार ने बलवंत राय हता समिति (1957) तथा अशोक मेहता समिति (1978) का ठन किया। इन समितियों द्वारा देश में पंचायती राज संस्थाओं ी स्थापना एवं विकास के लिए सिफारिशें की। इन सिफारिशों े आधार पर प्रायः सभी राज्य सरकारों में पंचायती राज संस्थाओं ो संवैधानिक दर्जा प्राप्त नहीं था, इसलिए इन संस्थाओं का वकसित होना या न होना राज्यों की इच्छा पर निर्भर था। एल. म. सिंघवी समिति (1986) ने पंचायती राज संस्थाओं को वशासित संस्थाओं के रूप में विकसित करने के लिए उनका विधानिकरण करने की सिफारिश की। इन सब समितियों के यास के फलस्वरूप संविधान में संशोधन हुआ और 24 अप्रैल, 993 को पंचायती राज कानून बना। सभी राज्यों ने इस केन्द्रीय ानून को ध्यान में रखकर अपने-अपने पंचायती विधेयक पारित र दिए हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि केन्द्र सरकार, राज्य सरकारें तथा न्य संस्थाएं क्या-क्या कदम उठाएं ताकि पंचायती राज संस्थाएं वकेन्द्रीकृत शासन और विकास में प्रभावी भूमिका निभा सकें। स लेख में यही बताने का प्रयास किया गया है।

## 3वें संविधान संशोधन अधिनियम की मुख्य विशेषताएं

इस अधिनियम की विशेषताओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। अनिवार्य और ऐच्छिक। अनिवार्य वे हैं जो विधानिक हैं और ऐच्छिक वे हैं जिन्हें राज्य सरकार की इच्छा र छोड़ दिया है। अनिवार्य इस प्रकार हैं : (1) ग्राम पंचायत का ग्राम स्तर पर गठन (2) ग्राम सभाओं का गठन (3) गांव, ब्लाक तथा जिला स्तर पर तीन श्रेणी की व्यवस्था (ऐसे राज्य जिनकी जनसंख्या 20 लाख से कम है, में मध्यम स्तर को छोड़ा जा सकता है) (4) सभी स्तरों पर सभी पदों के लिए सभी सदस्यों का सीधा चुनाव (5) मध्यम और शीर्ष स्तरों पर अध्यक्ष का अप्रत्यक्ष चुनाव, निम्न स्तर का फैसला राज्य पर (6) सदस्यों व अध्यक्षों के लिए न्यूनतम आयु 21 वर्ष (7) अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात के आधार पर पंचायतों के सदस्यों और अध्यक्षों के पदों पर आरक्षण (8) पंचायतों में एक तिहाई पदों (सदस्य एवं सरपंच) पर महिलाओं को आरक्षण, अनुसूचित व जनजाति की महिलाओं के लिए भी एक तिहाई आरक्षण (9) पांच वर्षीय अवधि (10) भंग या बर्खास्त होने की स्थिति में छः माह के अंतर्गत नए चुनाव (11) वित्तीय आयोग की स्थापना (12) राज्य निर्वाचन आयोग की स्थापना आदि अनिवार्य प्रावधान हैं। इसके अलावा (1) सांसदों व विधायकों को मध्यम स्तर और उच्च स्तर में मत देने का अधिकार (2) पिछड़ों को आरक्षण (3) कर अनुदान लेवी तथा शुल्क के मार्फत सशक्त वित्तीय प्रबंध (4) पंचायतों को स्वायत्त संस्थाएं बनाने का अधिकार जैसे प्रावधान ऐच्छिक हैं।

यहां पर संविधान की 243 (छ) धारा महत्वपूर्ण है। यह धारा राज्यों को अधिकार देती है कि "राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा पंचायतों को ऐसी शक्तियां और अधिकार प्रदान कर सकेगा जो वह उन्हें स्वायत्त शासन की संस्थाओं के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक समझे ....."

यद्यपि ये प्रस्ताव केन्द्र शासित प्रदेशों पर भी लागू होंगे तथापि उत्तर पूर्वी राज्य तथा दार्जिलिंग क्षेत्र इसकी परिसीमा से बाहर होंगे।

उपरोक्त विशेषताओं से स्पष्ट है कि पंचायतों को स्वायत्त शासन की संस्थाएं बनाने के अधिकार और कार्य देना राज्य की इच्छा पर निर्भर है।

*रिसर्च फैलो, सामाजिक विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली - 29

## अगला कदम

विकेन्द्रीकरण से अभिप्राय स्थानीय संस्थाओं को राजनैतिक और आर्थिक दोनों तरह के अधिकार देने से हैं जिससे ये संस्थाएं अपने स्वशासन और विकास के लिए स्वयं निर्णय ले सकें। इसके लिए वर्तमान अधिनियम एक उचित कदम है लेकिन यह काफी नहीं है क्योंकि 73वें संविधान संशोधन को ध्यान में रखकर बनाए गए सभी राज्यों के पंचायत कानून इस संशोधन के भाव के पूरी तरह अनुकूल नहीं हैं और यह भी साफ नजर आता है कि राज्य स्तर से जो कुछ हुआ वह ऊपर से थोपा हुआ विकेन्द्रीकरण है। अतः अब महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि अधिनियम रूपी बच्चा तो पैदा हो गया अब इसकी उचित देखभाल करनी है, ताकि यह सशक्त बने। इसलिए इस अधिनियम के बाद क्या-क्या अन्य कदम उठाए जाएं ताकि पंचायत राज प्रभावी बन सके। इन्हीं कदमों का अध्ययन यहां पर किया गया है।

### (1) केन्द्र से राज्य की ओर विकेन्द्रीकरण

वर्तमान संशोधन में केवल राज्य स्तर से नीचे की ओर विकेन्द्रीकरण की बात कही गई है। यह काफी नहीं है क्योंकि साथ में केन्द्र का राज्यों की ओर भी विकेन्द्रीकरण होना आवश्यक है। सभी केन्द्रीय योजनाओं को, (कुछ को छोड़कर) जो पायलट स्कीम के नाम से रख सकते हैं, राज्य सरकारों को हस्तांतरित कर देना चाहिए। यहां पर उदाहरण देना उचित होगा। वर्तमान में केन्द्र से राज्यों को जो वित्तीय साधन हस्तांतरित होते हैं उसका लगभग 35 प्रतिशत केन्द्र प्रस्तावित योजनाओं का है। 73वें संशोधन के साथ-साथ केन्द्र यह पहल करे कि सभी केन्द्र प्रस्तावित योजनाएं राज्यों को हस्तांतरित कर दी जाएं ताकि राज्य अपने स्तर से स्थानीय निकायों को धन हस्तांतरित कर सकें।

### (2) ग्रामीण क्षेत्रों के असंगत आर्थिक ढांचे में सुधार

वास्तव में ग्रामीण शक्ति संरचना में भूमि एक महत्वपूर्ण तत्व है जबकि इस पर मुट्ठी भर लोगों का अधिकार है। इसमें कोई शक नहीं है कि स्थानीय संस्थाओं में समाज के कमजोर वर्गों का आरक्षण उनको सशक्त करने की ओर उचित कदम है, लेकिन जब तक भूमि के रूप में परिसंपत्तियां इन वर्गों के लोगों को प्राप्त नहीं होंगी तब तक पंचायतों में इन वर्गों की प्रभावी हिस्सेदारी नहीं हो पाएगी। पश्चिम बंगाल मे जहां भूमि सुधार लागू किया गया पिछले से पिछले पंचायतों के चुनाव में पंचायत के तीनों स्तरों के सदस्यों व अध्यक्षों में 75 प्रतिशत लघु व सीमांत कृषक थे। इसके विपरीत कर्नाटक में अधिकतर जिला परिषदों के अध्यक्ष बड़े भूस्वामी थे। हरियाणा में भी पंचायतों के विभिन्न पदों पर भूस्वामियों का प्रभुत्व था। पंचायतों में जहां पर कमजोर तबके के लोग सदस्य या सरपंच बन गए थे, वास्तविक शक्ति, संपन्न जातियों के पास ही थी। कुल मिलाकर भूस्वामियों और नौकरशाही ने मिलकर पंचायतों की कार्य-प्रणाली को ध्वस्त कर दिया।

पश्चिम बंगाल और केरल में जहां भूमि सुधार लागू हुआ है गरीबी रेखा के अनुपात में 1977-78 तथा 1987-88 के बीच क्रमशः 48.10 तथा 65.50 प्रतिशत की कमी हुई है। इन सबसे साफ नजर आता है कि राजनैतिक प्रजातंत्र के लिए आर्थिक प्रजातंत्र का पहले होना आवश्यक है।

विदित है महिलाओं का 33 प्रतिशत आरक्षण है जबकि महिलाओं की वास्तविक स्थिति यह है कि आठवीं पंचवर्षीय योजना के अनुसार ग्रामीण आंचल में से कुल परिवारों में से 30 प्रतिशत परिवारों की मुखिया महिलाएं हैं जो परिवार के पालन का सारा बोझ उठाती हैं, जबकि उनके पास उनके नाम से कोई परिसंपत्ति नहीं है।

अतः इस तरह की स्थिति में सत्ता में इन वर्गों की भागीदारी तभी प्रभावी हो सकती है जब ये वर्ग साधन संपन्न हों और उसके लिए भूमि सुधार, धन का समान वितरण आदि आवश्यक है। गांधी जी ने ठीक ही कहा है कि "स्वराज्य कुल लोगों के सत्ता अधिग्रहण से नहीं आता बल्कि जब सत्ता का दुरुपयोग हो, तो सभी में उसके विरुद्ध आवाज उठाने की क्षमता प्राप्त करने से आता है।"

### (3) कानून निर्माण से आन्दोलन कार्यक्रम

पंचायती राज कानून को आन्दोलन का रूप देना है। पंचायती राज कानूनों को लोगों की भाषा में लोगों तक पहुंचाना है ताकि उन्हें ग्रामीण स्वराज्य के बारे में जानकारी प्राप्त हो सके।

अब तक का अनुभव बताता है कि निचले स्तर अर्थात् ग्रामीण स्तर पर पंचायती राज द्वारा सत्ता को ग्रहण करने की कोई रुचि नहीं नजर आती। कुछ राज्यों में पंचायतों के चुनाव 10, 15 व 17 और इससे भी अधिक वर्षों तक नहीं हुए, लेकिन गांव स्तर पर चुनाव हर पांच साल के बाद होने के लिए कोई इच्छा नहीं

है। दूसरी तरफ यदि राज्य स्तर पर चुनाव नहीं होते तो हंगामा हो जाता है। अतः जरूरी है कि सरकार व अन्य गैर सरकारी संगठनों द्वारा लोगों को पंचायती राज के लिए प्रेरित कर उन्हें जगाएं ताकि वे सजग बने। कर्नाटक में 1987-92 तक सफल पंचायत राज ने लोगों को जगाया है तभी वहां पर पंचायतों के चुनाव के लिए पंचायती नेता सर्वोच्च न्यायालय तक लड़ रहे हैं। इसी तरह की चेतना और उमंग सारे देश में पैदा करना आवश्यक है।

## (4) प्रशिक्षण

जैसाकि विदित है कि पंचायतों को 29 मद जो ग्याहरवीं सूची में हैं, दे दिए गए हैं। इसके अलावा पंचायतों को ग्राम योजना, ब्लाक योजना तथा जिला योजना बनानी है। यह ग्रामीण विकास के लिए बड़ी महत्वपूर्ण जिम्मेदारी पंचायतों को दी गई है। अतः जरूरी है कि पंचायत के नेताओं व कर्मचारियों को विकेन्द्रीकृत शासन और विकास के मूलभूत सिद्धांतों का ज्ञान कराना आवश्यक है। उन्हें उनके अधिकारों, कर्त्तव्यों और दायित्वों का बोध कराना भी आवश्यक है। अतः केन्द्र तथा राज्य सरकारों को पंचायतों के नेताओं और कर्मचारियों के प्रशिक्षण की पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध कराना जरूरी है। अक्तूबर 1994 तक सभी राज्यों की पंचायतों के चुनाव होने आवश्यक हैं। इस प्रकार अभी 3 या 4 महीनों में लगभग 24 लाख ग्रामीण लोग पंचायतों के नेता चुनकर आएंगे। इनमें से लगभग 23 प्रतिशत अनुसूचित जाति व जनजाति के होंगे और लगभग 8 लाख महिलाएं होंगी। अतः प्रशिक्षण सुविधाएं प्राप्त करना भी आवश्यक कदम है।

## (5) अन्य

उपरोक्त के अलावा समानान्तर संस्थाएं जैसे, ग्राम विकास प्राधिकरण, महिला, अनुसूचित जाति व जनजाति निगम, जिला उद्योग केन्द्र आदि को या तो समाप्त कर देना चाहिए या पंचायतों में शामिल कर देना चाहिए। पंचायतों को जो 29 मद दिए गए हैं वे राज्य के विभिन्न विभागों से संबंधित हैं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य आदि। अतः जरूरी है कि ये विभाग भी अपने कानूनों में संशोधन करें ताकि बाद में समस्या न हो।

## निष्कर्ष

संवैधानिक 73वां संशोधन अधिनियम विकेन्द्रीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है, लेकिन इसे सफल बनाने के लिए साथ में अन्य कार्य जैसे केन्द्र और राज्यों के अधिकार का विकेन्द्रीकरण, भूमि सुधार, धन का समान वितरण, लोगों को जागरूक बनाना, विकेन्द्रीकृत शासन व विकास के विभिन्न पहलुओं का पंचायत नेताओं व कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना, समान स्तर की संस्थाओं को समाप्त करना तथा साथ ही साथ केन्द्र तथा राज्य स्तर पर 29 विषयों से संबंधित विभिन्न विभागों के कानूनों को बदलना आवश्यक है। अतः इन आवश्यक कदमों को उचित रूप से लागू करना केन्द्र तथा राज्य स्तर पर राजनेताओं की इच्छा शक्ति तथा नौकरशाही की सहायता पर निर्भर करते हैं।

## प्रधानमंत्री की रोजगार योजना के अंतर्गत 30 हजार से अधिक उद्यमियों को ऋण मंजूर

प्रधानमंत्री की रोजगार योजना के अंतर्गत विभिन्न राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में 30 हजार से अधिक भावी उद्यमियों को ऋण मंजूर किए जा चुके हैं।

अधिकतम उद्यमी महाराष्ट्र से 4731 हैं। इसके बाद उत्तर प्रदेश से 3991, आंध्र प्रदेश से 3135, मध्य प्रदेश से 2942 और तमिलनाडु से 2680 उद्यमी हैं।

योजना के अंतर्गत कुल मिलाकर लगभग 2 लाख 20 हजार आवेदन प्राप्त हुए थे, जिनमें से जिला कार्य बलों द्वारा 82,670 उद्यमियों की ऋण के लिए बैंकों से सिफारिश की गई।

यह योजना 2 अक्टूबर 1993 को आरंभ की गई थी तथा इसका उद्देश्य शिक्षित बेरोजगार युवाओं को स्वरोजगार उपलब्ध कराना है।

# पंचायती राज : महिलाओं को राजनीतिक शक्ति

✍ सुन्दर लाल कुकरेजा

संविधान में 73वां संशोधन हो जाने और आधे से अधिक राज्यों द्वारा उसकी पुष्टि कर दिए जाने से अंततः ग्राम स्वराज का वह सपना और संकल्प पूरा होने के दिन आ गए जिसे महात्मा गांधी और अशोक मेहता जैसे नेता और विचारक देखते आए थे। इस संविधान संशोधन द्वारा देश भर में एक समरूप पंचायत राज प्रणाली का पुनर्जन्म होगा जिससे वर्षों, अपितु शताब्दियों से भारत के उपेक्षित गांवों में एक बार फिर स्थानीय स्वशासन व्यवस्था का आरंभ होगा और ग्रामीण जनता अपने क्षेत्र के विकास सम्बन्धी समस्याओं का समाधान खोजने में स्वयं पहल कर सकेगी। पंचायती राज व्यवस्था भारतीय लोकतंत्र की सबसे छोटी, किंतु सबसे महत्वपूर्ण और संभवतः सबसे प्रभावी इकाई बन जाएगी और संसद तथा विधानमंडल के साथ यह प्रणाली भी लोकतंत्र का तीसरा आधार बनेगी।

यद्यपि पंचायत प्रणाली भारतीय मानसिकता का अभिन्न अंग है और हमारी सामाजिक व्यवस्था में "पंचों की राय सिर माथे पर" लेने की परम्परा बहुत पुरानी है, किंतु विभिन्न कारणों से और तात्कालिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप धरातल पर पंचायतों का अस्तित्व नाम मात्र को ही रह गया था। पश्चिम बंगाल, कर्नाटक व कुछ अन्य राज्यों को छोड़कर अन्यत्र पंचायत व्यवस्था मृतप्रायः ही थी। कहीं कहीं तो पिछले 20 वर्षों से पंचायतें काम ही नहीं कर रही थीं। कुछ राज्य तो ऐसे हैं जहां पंचायत नाम की संस्था कभी अस्तित्व में ही नहीं आ पाई।

'पंचायत' शब्द से ही ऐसी व्यवस्था की ध्वनि निकलती है जिसमें जटिल और कठिन समस्याओं को भी पंचों के सद्भाव व सदबुद्धि से सरलता से सुलझा लिया जाता है। किसी भी झगड़े या विवाद में ऐसे निर्णय इन पंचायतों के नाम के साथ जुड़े हैं जिसमें सभी को न्याय और संतुष्टि मिलती थी।

किंतु धीरे-धीरे विधानमंडलों या ऐसी ही नामों वाली दूसरी सभाएं समितियां बनने लगीं जिनके क्षेत्र और अधिकार पंचायतों से बहुत अधिक थे लेकिन जिनमें बैठे लोग जनता की समस्याओं से दूर रहते थे और लोगों के साथ सीधे जुड़े मुद्दों को दूर से बैठकर ही निपटाने की कोशिश करते थे। अधिक अधिकारों के कारण इन सभाओं-समितियों को अधिक महत्व भी मिलने लगा और पंचायतों का प्रभाव-क्षेत्र घटता गया। एक स्थिति वह आ गई जब पंचायत के संदर्भ में राजनीतिक शक्ति का कोई अर्थ नहीं रह गया।

फिर भी, इस वास्तविकता से इंकार नहीं किया जा सकता कि पंचायतें लोकतंत्र का मूल आधार और अभिन्न अंग हैं। प्रत्यक्ष लोकतंत्र का सजीव आदर्श पंचायतें ही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायत प्रणाली को पुनर्जीवित करने के नए प्रयास 1978 में शुरू हुए जब तत्कालीन सरकार ने इस संबंध में सुझाव देने और उपाय सुझाने के लिए अशोक मेहता समिति का गठन किया था। अशोक मेहता समिति की सिफारिशें आने के बाद विभिन्न स्तरों पर उनका मंथन होता रहा और 1986 में पहली बार पंचायतों का पुनर्गठन करने, उन्हें अधिक अधिकार देने और प्रभावी बनाने का फैसला किया गया। 1989 में पंचायती राज की स्थापना के लिए एक विधेयक भी संसद में पेश किया गया जो राज्यसभा में कोरम के अभाव में पारित नही किया जा सका। उसी विधेयक को अब मामूली संशोधन के साथ संविधान के 73वें संशोधन के रूप में पारित किया गया है। इस संशोधन के बाद पंचायतों को भी वैसी ही संवैधानिक मान्यता मिल गई है जो अब तक केवल संसद और विधानसभाओं को ही प्राप्त थी।

## महिला शक्ति को महत्व

भारतीय समाज में महिलाओं का विशिष्ट स्थान और महत्व है, लेकिन जहां तक उन्हें पद और अधिकार देने की बात है, उनकी उपेक्षा और कई अर्थों में तिरस्कार भी होता आया है। वैसे तो देश के काफी बड़े भाग में पंचायतें ही नहीं हैं, लेकिन जहां हैं भी, उनमें महिलाओं की संख्या नगण्य है और कोई निर्णय लेने में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी तो बिल्कुल नहीं है। हरियाणा और बिहार जैसे राज्यों में जहां कुछ पंचायतें काम कर रही हैं, गांव की किसी बुजुर्ग, सम्मानित महिला को नाम के लिए पंचायत समिति में मनोनीत तो कर लिया जाता है, किंतु निर्णय लेने में उनकी ओर से न तो कोई पहल हो पाती है, न ही उनकी राय को अधिक महत्व दिया जाता है।

संवैधानिक मान्यता प्राप्त होने के बाद अब जो पंचायतें गठित होंगी, उनमें महिलाओं के लिए एक तिहाई या कम से कम तीस प्रतिशत स्थान आरक्षित रहेंगे। अनुसूचित जातियों व जन जातियों के लिए भी उनकी आबादी के अनुपात में स्थान आरक्षण की नए कानून में व्यवस्था है, किंतु उसमें भी यह व्यवस्था है कि इन जातियों के प्रतिनिधियों में भी कम से कम तीस प्रतिशत महिलाएं हों।

दूसरे शब्दों में यह पंचायती राज प्रणाली महिलाओं को राजनीतिक शक्ति देने का स्रोत और साधन भी है। यद्यपि संविधान में अब भी महिलाओं को पुरुषों के बराबर ही सामाजिक-राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं और वे संसद या विधानमंडलों के चुनावों में भाग ले सकती हैं किंतु व्यवहार में इन संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी बहुत कम है। देश भर में जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों–विधायकों और सांसदों–की संख्या लगभग 6500 है लेकिन इनमें महिलाओं की संख्या लगभग दो प्रतिशत तक ही सीमित रहती है। इसका अर्थ साफ है कि देश का शासन चलाने में महिलाओं की राय, उनकी भावनाओं और उनकी समस्याओं को महत्व नहीं मिल पाता।

कुछ राज्यों को छोड़कर अधिकांश में तो पंचायत स्तर तक भी महिलाओं का चुनाव नहीं किया जाता। खानापुरी के लिए अधिकतर एक या दो महिलाओं को मनोनीत कर दिया जाता है, लेकिन उनकी आवाज दबी रहती है और निर्णय लेने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने के बजाय वे केवल मूक दर्शक बनी रहती हैं। अक्सर तो अकेली महिला पंचायत की बैठकों में भाग लेने भी नहीं जा पाती। अब कुछ राज्यों आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, उड़ीसा, हिमाचल प्रदेश आदि में महिला पंचों का भी चुनाव होने लगा है।

## महिलाएं सक्षम हैं

यह धारणा गलत है कि महिलाएं कोई जिम्मेदारी उठाने को तैयार नहीं है या उनमें निर्णय लेने की क्षमता नहीं है। वास्तविकता यह है अब तक महिलाओं को उनके अधिकारों से वंचित रखा गया है और सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्र में आगे बढ़ने के उनके मार्ग की बाधाएं दूर करने के बजाय उसमें अधिक अड़चनें पैदा करने का ही प्रयास किया गया। ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि जब भी महिलाओं को आगे आने का अवसर मिला है, उन्होंने उनका पूरा उपयोग किया है। 1992 में जब उड़ीसा में पंचायतों के चुनाव हुए तो महिलाओं के लिए आरक्षित एक तिहाई स्थानों से भी कहीं अधिक संख्या में महिलाएं ग्राम पंचायतों के लिए चुनी गईं।

संविधान में पंचायतों में महिलाओं के लिए तीस प्रतिशत स्थान आरक्षित करने से उन्हें वे अधिकार व अवसर मिल जायेंगे जिन के अभाव में वह समाज की पिछली पंक्ति में शोषित वर्ग के रूप में खड़ी रहने को विवश हैं। पंचायत से जिला परिषद के स्तर तक महिलाओं के लिए स्थान आरक्षण एक नई क्रांति का आह्वान है और इसके चमत्कारी परिणाम सामने आयेंगे।

## लाखों महिलाएं मैदान में

स्थान आरक्षण के बाद देश भर में लाखों की संख्या में महिलाएं अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने के लिए मैदान में आ सकेंगी। पूरे देश में ग्राम पंचायतों की संख्या लगभग सवा दो लाख होगी। एक पंचायत में जनसंख्या के अनुपात से पांच से चौदह तक पंच चुने जा सकेंगे। औसतन अगर हर पंचायत में दस पंचों का भी निर्वाचन हो तो कुल पंचों की संख्या लगभग साढ़े बाइस लाख बैठती है। इसमें से अगर एक तिहाई महिलाएं हों तो उनकी संख्या करीब साढ़े सात लाख होगी। अगर यह माना जाए कि एक स्थान के लिए दो या तीन महिला उम्मीदवार होंगी तो चुनाव लड़ने वाली महिलाओं की संख्या 18-20 लाख के बीच होगी। इतनी बड़ी तादाद में महिलाओं का घर की चहारदिवारी से बाहर आना और जन समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करना समाज में निश्चित ही नई चेतना जगायेगा।

केवल ग्राम पंचायत में ही नहीं, ब्लाक और जिला स्तर की पंचायतों में भी महिलाओं को इतनी ही मात्रा में आरक्षण दिया गया है। अनुमान है कि ब्लाक पंचायतों की संख्या करीब पांच हजार होगी और उनमें सवा लाख प्रतिनिधि होंगे। इसी प्रकार जिला परिषदों की संख्या लगभग 500 होगी जिनमे करीब 15 हजार चुने हुए पंच होंगे। इन दोनों स्तरों पर भी क्रमशः चालीस हजार और पांच हजार महिलाएं चुनी जायेंगी। इस प्रकार कुल मिला कर लगभग आठ लाख महिलाएं पंचायतों के तीनों स्तरों के लिए चुनी जायेंगी। ग्राम, ब्लाक व जिला पंचायतों की कुल संख्या को देखते हुए 75 हजार से अधिक महिलाएं सरपंच या अन्य पदाधिकारी भी होंगी।

संविधान में यह भी व्यवस्था की गई है कि पंचायतों के तीनों

स्तरों पर अध्यक्ष पद भी महिलाओं और अनुसूचित जाति-जनजातियों के लिए उनके प्रतिनिधित्व के अनुपात में बारी-बारी से आरक्षित रहेंगे। महिला प्रतिनिधियों की नगण्य संख्या से उठकर इतनी बड़ी संख्या में विभिन्न पदों तक पहुंचने से निश्चित ही उनमें अधिक जागृति आयेगी, लेकिन साथ ही उनके कंधों पर अधिक जिम्मेदारी का बोझ भी आ जायेगा।

महिलाओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि समय आने पर वे कोई भी जिम्मेदारी उठा सकती हैं और उसे अच्छी तरह निभा भी सकती हैं। समाज के अधिक शिक्षित और सम्पन्न वर्ग से बनने वाली प्रशासक, इंजीनियर, पायलट, शिक्षक व अन्य क्षेत्रों में जाने वाली महिलाओं की बात छोड़ भी दें तो भी ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जब ग्रामीण महिलाओं ने अकेले प्रशासन की जिम्मेदारी संभाली है और उसे पूरा भी किया है। महाराष्ट्र की महिलाओं को यह गौरव प्राप्त है कि वहां नौ पंचायतें ऐसी थीं जहां केवल महिलाएं ही पंच थीं। आंध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश में भी केवल महिलाओं वाली पंचायतें काम कर चुकी हैं। अन्य कई राज्यों में महिला मंडलों का गठन किया गया है। उत्तर प्रदेश में ऐसे मंडल तो नहीं हैं लेकिन वहां के पर्वतीय क्षेत्रों में 'चिपको आंदोलन' के बाद वृक्षों और वनों की सुरक्षा के लिए महिला मंगल दल गठित हुए हैं।

## अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण

महिलाओं के साथ ही अनुसूचित जातियों-जनजातियों को भी प्रशासन की जिम्मेदारी में भागीदार बनाने के लिए पंचायतों में आरक्षण प्रदान किया गया है। पंचायत क्षेत्र में इन जातियों की आबादी के अनुपात में उनके लिए सीटें आरक्षित की जायेंगी और राज्य सरकार बारी-बारी से ऐसी सीटों के आरक्षण की घोषणा करेगी। आबादी के प्रतिशत के अनुपात में आरक्षण करने से अब इन जातियों के वंचित वर्ग को भी शासन में भागीदारी का पूर्ण अवसर मिल सकेगा और वे अपने अधिकारों के लिए किसी अन्य के रहम पर आश्रित नहीं रहेंगे। इन जातियों के आरक्षण का आधार जनसंख्या में इनका अनुपात होने से कुल सीटों में उनकी सीटों की निश्चित संख्या तय नहीं की गई है लेकिन यह अवश्य सुनिश्चित किया गया है कि समाज का यह पिछड़ा और कमजोर वर्ग भी स्थानीय स्वशासन में पूरी हिस्सेदारी पा सकेगा।

## जिम्मेदारी उठाने की तैयारी

महिलाओं और अनुसूचित जातियों-जनजातियों के लिए पंचायती राज संस्थाओं में किया गया आरक्षण उनके लिए आगे की बड़ी संस्थाओं—विधान मंडलों और संसद में भी उनकी अधिक सक्रिय भागीदारी का मार्ग प्रशस्त कर सकेगा। लेकिन इसके साथ ही यह भी ध्यान में रखना होगा कि इन वर्गों को समाज में अपना स्थान बनाने और इनके प्रतिनिधियों को अपनी नई जिम्मेदारी उठाने के लिए पहले से तैयारी करनी होगी।

पंचायत समितियों में चुनी गई महिलाओं पर जिनमें अनुसूचित जाति और जनजातियों की महिलाएं भी शामिल हैं, अपनी स्थानीय समस्याओं और विवादों को हल करने की महती जिम्मेदारी होगी और समाज के अन्य सदस्य उनसे यह अपेक्षा करेंगे कि उनके द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि, विशेषकर महिलाएं, अपने दायित्वों को अच्छी तरह निभायें। पंचायतों के कार्य और अधिकार-क्षेत्र का निर्धारण तो सम्बन्धित राज्य सरकार द्वारा बनाये गये कानूनों से होगा, किंतु ऐसे अनेक विषय और क्षेत्र हैं जिनमें स्वयं महिलाओं व अन्य पंचों को पहल करके अपनी स्थानीय समस्याओं को हल करना होगा। पंचायतों को मजबूत करने का मूलभूत उद्देश्य और अंततः लक्ष्य भी यही है कि स्थानीय जनता अपनी ऐसी जरूरतों के लिए, जिन्हें वे स्वयं हल कर सकते हैं, प्रदेश की राजधानी में बैठी विधानसभा या सरकारी अधिकारियों पर आश्रित न रहे।

चाहे गांव मे पीने के पानी की कठिनाई हो या साक्षरता प्रसार का अभियान हो, गांव के युवकों के लिए रोजगार का प्रबंध करना हो या फसल को बीमारी से बचाने की समस्या हो अथवा ग्रामीण महिलाओं और दस्तकारों के लिए आय के अतिरिक्त साधन खोजने हों, ये सब काम स्थानीय ग्राम पंचायतें आपसी सहयोग को बढ़ावा देकर और विकास कार्यों में सबकी भागीदारी सुनिश्चित करके कहीं बेहतर ढंग से कर सकती हैं। बढ़ती आबादी की रोकथाम, स्वच्छता, पर्यावरण की रक्षा, बच्चों को पौष्टिक व संतुलित आहार देने और सबसे बढ़कर स्थानीय संसाधनों के उपयोग से अधिकाधिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की दिशा में महिलाएं अमूल्य योगदान दे सकती हैं।

कहावत है कि बिना परिश्रम तो शेर को भी भोजन नहीं मिलता। संविधान में संशोधन करके महिलाओं और समाज के अन्य कमजोर वर्गों को उनके उचित अधिकार तो दे दिए गए हैं, लेकिन इन अधिकारों को एक अवसर और एक चुनौती मानकर

**(शेष पृष्ठ 33 पर)**

# जन और मातृ-शक्ति की प्रतिष्ठा

✍ जितेन्द्र गुप्त

गणतंत्र और पंचायती राज की उद्भावना भारत की समृद्ध विरासत के अभिन्न अंग रहे हैं। गणतंत्रों को उनके शासकों की महत्वाकांक्षाएं और आपसी वैर भाव की लहरें लील गयीं, लेकिन ग्राम प्रशासन का पंचायती ढांचा हजारों साल तक, अंग्रेजों के आने तक, अपने जीवंत रूपों में कायम रहा। यही कारण है कि पंचायत व्यवस्था सुनहरे सपने की तरह राष्ट्रीय स्मृति में जीवित रही। महात्मा गांधी जब ग्राम स्वराज्य की बात करते थे तब उनके मन में पुरातन भारतीय परंपरा का बोध था कि गांव का प्रशासन उसके प्रतिनिधियों के हाथ में ही रहना चाहिए, दिल्ली, लखनऊ या कलकत्ता में बैठी सरकारों के हाथ में नहीं। उनको इस चुनौती का भी अहसाह था कि सदियों से शोषित और उपेक्षित ग्रामीणों के सक्रिय सहयोग और भागीदारी के बिना ब्रितानी शासन प्रणाली द्वारा थोपी गयी जड़ता दूर नहीं होगी।

गांधी जी ने चाणक्य की तरह कोई संहिता नहीं रची, लेकिन जीवन और सामाजिक दर्शन के सूत्र उन्होंने अपने कर्म से विज्ञापित और प्रसारित किए। इस राजनैतिक संत ने व्यक्ति की गरिमा और आत्मविश्वास की प्राण-प्रतिष्ठा के लिए ही असहयोग का रास्ता अपनाया था और देश को—गांवों को भी—जागृत किया था।

चाणक्य-युगीन व्यवस्था में सबसे निचले स्तर पर ग्रामसंघ होते थे और ग्राम निवासियों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि (ग्राम वृद्ध) ग्राम का प्रशासन चलाते थे। संघ का मुखिया ग्रामिक कहलाता था, जो भूमि प्रबंध तथा कृषि प्रबंध के नियमों के अनुपालन, शिक्षा, संस्कृति और मनोरंजन आदि से जुड़े मामलों की व्यवस्था के अलावा अपराधियों को दंडित करने और जुर्माने वसूल करने का भी काम करता था।

ग्राम संघों के प्रशासन पर निगाह रखने के लिए राज्य की ओर से गोप नामक अधिकारी की नियुक्ति होती थी। उसके मुख्य दायित्व थे ग्राम सीमाओं का निर्धारण, जनगणना और भूमि प्रबंध की व्यवस्था पर निगरानी रखना। लेकिन ग्राम संघ स्वायत्त होते थे और वे परंपराओं का पालन करते थे।

आधुनिक काल के इतिहास के अध्येता धर्मपाल की 'मद्रास-पंचायत सिस्टम्स' नामक पुस्तक बताती है कि "भारतीय समाज तेरहवीं से अठारहवीं सदी तक व्यापक उथल-पुथल का शिकार रहा है, फिर भी ये संस्थाएं (पंचायतें) सन् 1800 के आसपास तक प्रायः सभी अर्थों में अपने इलाकों में काम कर रही थीं। वे अपने इलाकों में और वहां के लोगों के आंतरिक प्रशासन का काम कायदे से कर रही थीं। चूंकि आमतौर पर वे परंपराओं के अधीन काम करती थीं, इसलिए उनमें स्थानीय भिन्नता भी पाई जाती थी। आतंरिक रूप से वे धर्म से और बाहरी मामलों में वे वृहतर समाज की राजनैतिक मर्यादाओं से मर्यादित होती थीं।"

धर्मपाल के शोध ग्रंथ के अनुसार पंचायतों के पतन के दो कारण मुख्य रहे हैं - प्रशासनिक और वित्तीय अधिकरों में कटौती। अंग्रेजों ने और कुछ हिस्सों में देशी राजाओं ने गांवों के राजस्व और जमीन के दस्तावेजों, कर्णम (पटवारी), पुलिस समेत स्थानीय स्वाशासन के सारे तंत्र को अपनी मुट्ठी में बंद कर लिया। सरकारी खजाना भरने और ग्रामीणों को कमजोर करने के लिए भूमिकर को भूमि राजस्व में बदल दिया और उसे मोटे तौर पर सकल खेतिहर उत्पादन के 50 प्रतिशत तक पहुंचा दिया।

कोई भी प्राचीन तंत्र ठीक उसी रूप में दुबारा नहीं खड़ा किया जा सकता, क्योंकि परिस्थितियां बदल चुकी होती हैं, नए संदर्भ और जरूरतें आ जुड़ती हैं। फिर भी कुछ बुनियादी मूल्य कभी नहीं बदलते। मसलन निर्धारित दायरे में मानव निर्मित सभी संगठनों को पर्याप्त स्वायत्तता होनी चाहिए और साथ ही आंतरिक और बाह्य मर्यादाओं की प्रतिष्ठा भी।

कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में आर्थिक विकास का काम बहुत पेचीदा हो गया है। विज्ञान और नई टैक्नोलाजी के बिना काम नहीं चल सकता। ठीक है। ये चीजें गांव वालों को

मुहैया कराइए। आखिर खेती उन्हीं को करनी है, वनों और रोपे गए वृक्षों की हिफाजत वही कर सकते हैं, नहर नहीं आ सकती तो बरसात का पानी रोकने के लिए तालाब उनको ही बनाने या बनवाने हैं और उनकी देखभाल भी उन्हीं को करनी है।

धीरे-धीरे आजादी मिलने के बाद चार दशकों के स्पष्ट हो गया कि पंचायती राज के नाम पर कमजोर या क्षत-विक्षत ढांचा अपने ढंग से खड़ा कर देने से काम नहीं चलता। केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा ग्राम विकास योजनाओं के लिए खर्च किये जाने वाले रुपये में से केवल 15 फीसदी पैसा गांवों तक पहुंचता है। सरकारी अमला तो अपने ढंग से कर्त्तव्यनिर्वाह करता है जो ज्यादातर खाना पूरी होती है। परिणाम अच्छा हो या न हो, उसमें उसका कोई स्वार्थ नहीं, इसलिए वह या तो ड्यूटी बजाता है या अनुग्रह करता है। आम ग्रामवासी के लिए भी विकास या योजना का अर्थ है कर्जा, अनुदान या सरकारी कर्मचारियों का अनुग्रह। अब वह अपने लाभ के कामों के लिए भी अपेक्षा करता है कि उन्हें सरकार करेगी।

इस प्रशासनिक जड़ता और ग्रामीणों में आश्रित होने का भाव समाप्त करने के लिए संविधान में 73वां संशोधन किया गया है। इसके अनुकूल राज्यों ने विधेयक पारित कर दिए हैं और इस वर्ष के अंत तक देश भर में पंचायती राज संस्थाएं कायम हो जानी चाहिए।

ग्राम, खंड (तालुका) और जिलास्तर पर पंचायती निकायों की संवैधानिक व्यवस्था कितनी सार्थक और कारगर साबित होती है यह विभिन्न राज्यों के पंचायत विधेयकों के अलावा स्थानीय परिस्थितियों, ग्रामीण क्षेत्रों की सजगता, सामाजिक रिश्तों तथा आर्थिक और प्रशासनिक प्रबंध कुशलता पर निर्भर करेगा। लेकिन यह व्यवस्था अपार संभावनाओं की खान है। कोई भी ग्राम पंचायत खड़िया मिट्टी और ब्लैक बोर्ड का प्रबंध करके दो महीने के अंदर सबको साक्षर बना सकती है — न कोई खास खर्चा आना है और न किसी बाहरी संस्था का मुंह जोहना है। इसी तरह कुओं और तालाबों के रख-रखाव का बंदोबस्त तथा दूसरे काम सामूहिक प्रयास से किए जा सकते हैं।

नई पंचायत व्यवस्था का एक और पक्ष है — विधान सभा सदस्यों और संसद सदस्यों को आशंका है कि गांवों को स्वायत्तता मिल जाएगी तो उनका प्रभाव घट जाएगा। गुजरात के पंचायत विधेयक में उनको पंचायती निकायों में आमंत्रित व्यक्ति की हैसियत से ही बुलाया जाएगा — पदेन सदस्य की हैसियत से नहीं। उन्हें मतदान का अधिकार नहीं होगा। कुछ राज्य उन्हें जिला परिषद या मंडल स्तर पर सदस्यता देने की व्यवस्था कर सकते हैं, लेकिन यह जरूरी नहीं है।

संभवतः विधायकों को आश्वस्त करने के लिए, ग्राम विकास में सांसदों की हिस्सेदारी बरकरार रखने के लिए वर्ष में एक निश्चित राशि के कार्यक्रम मंजूर करने का अधिकार दिया गया है। वे कार्यक्रम जिला अधिकारी द्वारा लागू किए जाएंगे। कल हो सकता है कि राज्य सरकारें भी अपने विधायकों को ऐसी सुविधाएं देने लगे।

ये सब व्यावहारिक राजनीति के तकाजे भले ही हों, इतना तो साबित होता ही है कि पंचायती राज संस्थाओं का प्रस्तावित स्वरूप कितना महत्वपूर्ण है। इस तरह की दूसरी समस्याएं भी सामने आ सकती हैं। शंकालुओं की समस्या सूची काफी लंबी है।

नई व्यवस्था का मार्ग प्रायः कंटकाकीर्ण होता है। पंचायतों के माध्यम से जनशक्ति का जो उभार होगा वह इन समस्याओं से निपटती चलेगी। जैसे-जैसे उसकी जड़ें जमती जाएंगी लोकमत का दबाव समाधान पैदा करता चलेगा।

संवैधानिक पंचायती राज व्यवस्था एक क्रांतिकारी व्यवस्था है या कम से कम क्रांति की संभावनाएं तो निहित हैं ही उसमें। प्रत्येक स्तर पर महिलाओं के लिए एक-तिहाई स्थानों का आरक्षण तो निश्चय ही मौन क्रांति का सूचक है। पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी का आह्वान उन पर की जा रही कृपा नहीं है, वरन आधे भारत को, जिसे सदियों से दबाकर रखा गया, सामाजिक जिम्मेदारियों से जोड़ने का प्रयास है। इस वर्ग में कितनी रचनात्मक शक्ति छिपी है उसका एक उदाहरण है उत्तराखंड के 'चिपको आंदोलन' से जुड़ी महिलाओं का अनौपचारिक संगठन — महिला मंगल दल। गोपेश्वर में दशोली ग्राम स्वराज मंडल के तत्वावधान में कार्यरत इस ग्राम स्तरीय संगठन में गांव के हर घर की एक स्त्री सदस्य होती है। महिला मंगल दल पास-पड़ोस की जमीन का संरक्षण ही नहीं करता, बल्कि पेड़ रोपता है और उपलब्ध चारे का समान बंटवारा भी करता है। इस तरह स्त्रियों के सामूहिक प्रयास के और भी उदाहरण दिए जा सकते हैं। आंध्र प्रदेश में

अर्क (शराब) विरोधी आंदोलन पियक्कड़ पतियों से त्रस्त परिवारों की स्त्रियों ने चलाया और काफी हद तक सफल भी रहीं।

पंचायती राज निकायों में महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित करने का प्रबल तर्क यह है कि देश के अधिकतर हिस्से में ग्रामीण स्त्रियां, खासकर साधारण घरों की स्त्रियां खेतों में तो काम करती ही हैं, ईंधन और पीने के पानी का जुगाड़ भी उनको करना पड़ता है। घर का काम काज अलग से। वे शिक्षा और पोषक आहार से वंचित भले ही रखी गई हों, जिम्मेदारी और कर्मठता उनके हिस्से में जरूर आई है। मध्ययुगीन सामाजिक परंपराओं और मानसिकता की पकड़ ढीली करने और सामाजिक जीवन में उन्हें आगे बढ़ाने का इससे अच्छा उपाय मिलना कठिन है।

सबसे पहले कर्नाटक के पंचायत अधिनियम 1983 में स्त्रियों के लिए 25 प्रतिशत स्थान सुरक्षित किए गए थे। इस अधिनियम पर 1987 में अमल हुआ। इससे पूर्व पंचायतों में स्त्रियों को नामजद किया जाता था। महाराष्ट्र में 1978 में पंचायत समितियों और जिला परिषदों में 320 स्त्री प्रतिनिधि थीं, जिनमें से 314 नामजदगी के जरिए वहां पहुंची थीं।

पुरुष-प्रधान समाज भले ही कहे कि उसने स्त्रियों के प्रति भेदभाव या अन्याय नहीं किया है, तथ्य उसकी तरफदारी नहीं करते। छोटी लड़कियों की मृत्युदर लड़कों की मृत्युदर से अधिक है। 1991 की जनगणना के अनुसार स्त्रियों में साक्षरता की दर केवल 39.42 प्रतिशत है जबकि पुरुषों में वह लगभग 64 प्रतिशत है। काम करने वाले पुरुषों की दर 51.56 प्रतिशत है तो स्त्रियों की केवल 22.73 प्रतिशत। बाकी औरतें निठल्ली नहीं बैठी रहतीं, वे खेतों में, घर में, खलिहान में काम करती हैं।

समाज और राजनीति में स्त्रियों की हिस्सेदारी के लिए क्या स्थानों का आरक्षण जरूरी है? इसके उत्तर में जवाबी सवाल किया जा सकता है - क्या कोई और रास्ता हो सकता है जो एक निश्चित अवधि में लड़की के जन्म को अभिशाप न समझने की मानसिकता पैदा करे, स्त्रियों में आत्मविश्वास पैदा करे, उन्हें शिक्षा के समान अवसर दे और सामाजिक जीवन में उनको बराबर का दर्जा दे ?

हमें कहीं न कहीं से शुरूआत करनी होगी। 73वां संविधान संशोधन इसी तरह की शुरूआत है। उड़ीसा के मुख्यमंत्री बीजू पटनायक तो अब यहां तक कहने लगे हैं कि एक-तिहाई की जगह आधी सीटें औरतों के लिए आरक्षित की जानी चाहिए — आबादी में उनके प्रतिशत के अनुसार। यह भी सही है कि कानून से रातोंरात समाज नहीं बदला करते और केवल प्रतिनिधित्व देने से बराबरी के अहसास की वर्षा नहीं होने लगेगी। किंतु यह भी सही है कि सती का निषेध करने वाला कानून न बनता तो यह प्रथा न मिटती।

आरंभ में पंचायतों में स्त्री प्रतिनिधियों को बाअसर बनने में कुछ समय लग सकता है, लेकिन अनुभव काफी कुछ बहुत जल्द सिखा देता है। इस बारे में इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज के अध्ययन का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा। इस संस्थान ने 1987 और 1990 के बीच कर्नाटक में पंचायती राज निकायों के लिए चुनी गई स्त्रियों की स्थिति और भावी संभावनाओं के बारे में पड़ताल की थी। इसके अनुसार जिला परिषदों में लिंगायत और वोक्कालिगा जातियों के प्रतिनिधियों का प्रतिशत 50.6 था। इन्हीं जातियों की स्त्री प्रतिनिधियों का प्रतिशत 60 प्रतिशत था। यानी राजनैतिक और सामाजिक दृष्टि से सजग जातियां अधिक सीटें ले गईं। यह भी देखा गया कि पुरुषों के मुकाबले 45 वर्ष से कम उम्र की स्त्रियों की संख्या अधिक थी, क्योंकि उम्रदराज औरतों ने पुरानी विचारा धारा की होने के कारण कम दिलचस्पी दिखाई। जिला परिषदों की तीन-चौथाई महिलाओं को सक्रिय राजनीति का अनुभव नहीं था।

1987 के चुनाव में जिन महिलाओं ने हिस्सा लिया था वे अधिकतर राजनैतिक नेताओं की रिश्तेदार थीं। अनुभवहीनता के कारण जिला परिषद की बैठकों में वे अधिक नहीं बोलती थीं। कर्नाटक के दक्षिणी और तटवर्ती जिलों की सदस्य महिलाएं उत्तरी जिलों की महिलाओं के मुकाबले ज्यादा खुलकर बात करती थीं, क्योंकि वे शहरी माहौल से आई थीं। उनका सांस्कृतिक और सामाजिक परिवेश भी भिन्न था। इन जिला परिषदों में पुरुषों में लगभग 20 प्रतिशत के पास व्यावसायिक या स्नातकोत्तर शिक्षा का प्रमाणपत्र था जबकि महिलाओं में शिक्षितों का प्रतिशत केवल पांच था।

लगभग दो वर्ष बाद जब उन्हीं जिला परिषदों का फिर अध्ययन किया गया तो कई तरह के परिवर्तन दिखाई दिए। अब पहले के मुकाबले ज्यादा महिलाएं अपने को अभिव्यक्त कर लेती थीं। विभिन्न मुद्दों पर अपनी राय देती थीं और वजनदार टिप्पणियां करती थीं। यह भी गौर किया गया कि प्रतिनिधि और पदाधिकारी स्त्रियां भ्रष्टाचार से दूर रहना श्रेयस्कर समझती थीं। पंचायतों के सामने, शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई आदि से संबंधित मामलों पर उनका दृष्टिकोण सुलझा हुआ होता था।

**(शेष पृष्ठ 35 पर)**

# चुनौतीपूर्ण है पंचायती राज कायम करना

**डा० कैलाश चन्द्र पपनै**

पंचायती राज की अवधारणा भारत के लिए नई नहीं है। पूरे देश की जनता, विशेष रूप से ग्रामीण जन किसी न किसी रूप में पंचायत प्रणाली की जानकारी और अनुभव रखते हैं। परंतु पिछले अनेक वर्षों से पंचायती व्यवस्था निष्प्राण रही है। देश की आजादी के बाद सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के माध्यम से जो पंचायत प्रणाली लागू की गई वह ग्रामीणों की आकांक्षाओं की पूर्ति करने में असमर्थ सिद्ध हुई क्योंकि लक्ष्य समूहों और स्थानीय नौकरशाही के बीच दूरी बहुत अधिक थी। इससे यह स्पष्ट हो गया कि स्थानीय ग्रामीणों की भागीदारी के बिना ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों को सफलता नहीं मिल सकती। 1950 के दशक में चले इन कार्यक्रमों से प्राप्त अनुभव और पंचायती राज के बारे में बलवंत राय मेहता समिति की रिपोर्ट के आधार पर 1960 के दशक में विभिन्न राज्यों में त्रि-स्तरीय पंचायत प्रणाली लागू की गई। यह उम्मीद की गई कि गांव पंचायत, पंचायत समितियों तथा जिला परिषदों के निर्वाचित पदाधिकारी स्थानीय पहल को प्रोत्साहित करेंगे तथा ग्रामीण समस्याओं के स्थानीय समाधान खोजे जा सकेंगे। दुर्भाग्यवश इस प्रयोग को उच्च सदनों के लिए निर्वाचित जन प्रतिनिधियों का समर्थन नहीं मिल सका। इस उभरती हुई पंचायती राज व्यवस्था को विधायकों के असहयोग का सामना करना पड़ा। राज्य सरकारों का रुख भी विशेष सहायक नहीं रहा और उन्होंने भी पंचायती राज के वृक्ष की जड़ों को खोखला होने से रोकने के उपाय नहीं किये। पंचायती राज व्यवस्था को सत्ता के विकेन्द्रीकरण और स्थानीय संसाधनों पर आधारित आर्थिक विकास का संवाहक समझने के बजाय प्रतिस्पर्धा सत्ता-केन्द्र के रूप में समझने की भूल की गई। नतीजा यह हुआ कि इन पंचायती राज संस्थाओं को आर्थिक विकास के कार्यक्रमों को लागू करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं मिले और वे बेजान होकर रह गईं। पंचायती राज संस्थाओं की कार्यप्रणाली के अध्ययन के लिए 1978 में गठित अशोक मेहता समिति ने एक नए माडल की सिफारिश की थी। इस मॉडल में पंचायतों के राजनीतिक महत्व को प्रतिपादित किया गया तथा पंचायतों को शक्तिशाली बनाने का सुझाव दिया गया।

अब 73वें संविधान संशोधन विधेयक के पारित होने के बाद पंचायतों को अनेक अधिकार मिल गये हैं। आधे से अधिक राज्यों द्वारा तदनुरूप अपने कानूनों को बदलने की औपचारिकता पूरी कर लेने से सत्ता का विकेन्द्रीकरण कर ग्रामीण जनता को अधिकाधिक अधिकार देने का मार्ग प्रशस्त हुआ है। इस कदम से पंचायतों को दिये गए अधिकार और उनके लिए प्रस्तावित लोकतंत्रिक ढांचा संविधान का अंग बन गए हैं। इस ऐतिहासिक संवैधानिक व्यवस्था के रहते अब ग्रामीणों को कोई उनके लोकतांत्रिक अधिकारों से वंचित नहीं कर सकता है। हर पंचायत का कार्यकाल पांच वर्ष का होगा। यदि किसी वजह से कार्यकाल की पांच वर्ष की अवधि पूरी होने से पूर्व उसे भंग किया जाता है तो छः माह के भीतर पुनः चुनाव करवाना अनिवार्य है।

इसके अलावा अब पंचायतों को अपने दायित्वों का निर्वाह करने के लिए पर्याप्त कोष देना सुनिश्चित किया गया है। राज्य सरकारों से मिलने वाला अनुदान उनकी आय का महत्वपूर्ण साधन होगा। इसके साथ ही यह प्रावधान भी रखा गया है कि राज्य सरकारें कुछ करों की आय पंचायतों को ही दे दें। इसके अलावा पंचायतों को कुछ राजस्व उगाहने और उसे अपने ही पास रखने की भी छूट होगी।

पंचायतों की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ रखने की ही दृष्टि से हर राज्य में एक वर्ष के भीतर वित्त आयोग के गठन का प्रावधान है। उसके बाद पांच-पांच वर्षों के अंतराल से राज्यों में वित्त आयोगों का गठन किया जाएगा ताकि पंचायतों के लिए उपयुक्त वित्तीय साधन जुटाने के आधारभूत सिद्धान्त तय किये जा सकें।

अब राज्यों द्वारा संविधान संशोधन के प्रावधानों के अनुरूप अपने अधिनियमों में परिवर्तन किये आने के बाद पंचायतों द्वारा विभिन्न कार्यक्रमों के अमल में सुधार की आशा की जा सकती है। फिलहाल सोचा यह गया है कि केन्द्रीय योजनाओं के अंतर्गत राज्यों को दी जाने वाली धनराशि का एक हिस्सा अब सीधा पंचायतों को भेजा जाए। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना, इंदिरा आवास योजना, ग्रामीण महिला तथा बाल विकास कार्यक्रम, ग्रामीण युवा स्व-रोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, देहाती कारीगरों को उन्नत औजार देने जैसे कार्यक्रमों,

के लिए निर्धारित राशि अब सीधे पंचायतों को भेजी जा सकती है। पंचायतों को अधिकार देने के लिए तैयार संवैधानिक ढांचे में 29 विषय निर्धारित किये गए हैं। ग्यारहवीं अनुसूची में दर्ज ये विषय गांवों के सामाजिक-आर्थिक विकास के सभी पहलुओं से संबंध रखते हैं।

पंचायती राज संबंधी संविधान संशोधन का प्रमुख उद्देश्य विकास की प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी बढ़ाना है। इससे पूर्व यह महसूस किया जाता रहा है कि अपने ही विकास को तथा जीवन को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर फैसले लेने में लोगों की भागीदारी की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन अब दृष्टिकोण में बदलाव आ गया है। अब पंचायतों की एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित करने तथा जनसंख्या के अनुपात में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए आरक्षण किये आने से सभी वर्गों के उचित प्रतिनिधित्व का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

नए पंचायती राज कानून व राज्यों में तदनुरूप अधिनियमों से जनता को सत्ता देने की आधारभूत आवश्यकता की पूर्ति हुई है। परंतु मंजिल अभी भी दूर है। त्रि-स्तरीय पंचायत व्यवस्था के अंतर्गत विभिन्न निकायों को संवैधानिक मान्यता राज्य निर्वाचन आयोग की देख-रेख में अनिवार्य चुनाव तथा वित्तीय साधनों के बंटवारे की व्यवस्था निश्चित रूप से स्वागत योग्य अभिनव प्रावधान हैं परंतु व्यवहार के स्तर पर अभी अनेक चुनौतियां सामने आएंगी। यह बात याद रखी जानी चाहिए कि उपयुक्त राजनीतिक और लोकतांत्रिक संस्कृति के अभाव में तमाम संस्थाएं और लोकतांत्रिक प्रक्रियाएं मजाक बन कर रह जाती हैं। पंचायती राज अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत राज्य सरकारों को अपने कुछ अधिकार पंचायती संस्थाओं को सौंपने हैं। क्या राज्य सरकारें पूरी निष्ठा और गंभीरता के साथ ऐसा करेंगी? राज्यों की गंभीरता में कमी का एक ताजा उदाहरण पंचायती राज कानून के अनुरूप पंचायती अधिनियम संशोधित करन में शिथिलता का है। पंचायत राज अधिनियम 23 दिसम्बर 1992 को संसद द्वारा पारित किया गया। आधे राज्यों द्वारा इसकी पुष्टि के बाद राष्ट्रपति ने 20 अप्रैल 1993 को इसे अपनी मंजूरी प्रदान कर दी। 24 अप्रैल 1993 को जारी की गई अधिसूचना द्वारा यह अधिनियम प्रभावी हो गया। अब राज्य सरकारों को एक वर्ष के भीतर अपने कानूनों में भी इस अधिनियम के अनुरूप परिवर्तन करने थे। परंतु अधिकांश राज्य सरकारों ने ऐसा नहीं किया। उम्मीद की जाती थी कि राज्य सरकारें इस मसले पर गंभीरता से विचार कर आवश्यक कदम उठाएंगी परंतु वर्ष भर का समय यूं ही बर्बाद होने के बाद केन्द्र के दबाव में और आवश्यक कानूनी बाध्यता के निर्वाह के लिए संशोधनों की औपचारिकता निभाई गई। ये संशोधन भी कितने सार्थक हैं यह समय आने और कसौटी पर कसे जाने पर पता चलेगा। ग्यारह राज्यों ने तो एक वर्ष की अवधि समाप्त होने से पूर्व अंतिम 72 घंटों में वांछित कार्रवाई की। यह भी तब जबकि केन्द्र ने राज्यों की मदद के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान, हैदराबाद द्वारा तैयार किया गया एक आदर्श विधेयक पहले ही जारी कर दिया था।

फिलहाल कानूनी प्रावधान तो हो गए हैं परंतु इनकी सफलता व प्रभावोत्पादकता पंचायती राज संस्थाओं और राज्य सरकारों के बीच संबंधों की सार्थकता पर आश्रित रहेगी। यदि राज्य सरकारें पंचायती संस्थाओं को दिये जा रहे अधिकारों को अपने अधिकारों में कटौती के रूप में देखने के बजाय जनता को सत्ता सौंपने और लोगों को अपने विकास तथा शासन संबंधी निर्णय खुद करने का मौका देने का आदर्श हासिल करने के रूप में लें तो फिर कोई समस्या न रहे। राज्य सरकारों और पंचायती राज संस्थाओं के बीच उपयुक्त रिश्तों के विकास में समय लगना निश्चित है। बहुत कुछ राजनीतिक दलों के रुख पर भी निर्भर होगा। राजनीतिक दलों को भी नई चुनौतियों को देखते हुए वैचारिक एवं व्यावहारिक धरातल पर अपना परिष्कार करना होगा।

पंचायती राज संस्थाओं के लिए आवश्यक कानूनी उपाय और इन संस्थाओं का अस्तित्व में आ जाना ग्रामीण विकास व पंचायती राज प्रणाली की सफलता की गारंटी नहीं है। ग्रामीण समाज की संरचना और उसका व्यवहार अत्यंत जटिल है। अज्ञान, संकीर्णता और नितांत स्थानीयता ग्रामीण समाज में टकराव और सम्प्रदायवाद का कारण बन सकते हैं। इसके अलावा भ्रष्टाचार भी पंचायत व्यवस्था की जड़ों को खोखला बना सकता है। व्यवहार के धरातल पर पंचायती राज संस्थाओं की सफलता गांवों की राजनीति सत्ता, समीकरणों, जातिगत हितों व नई चेतना के जटिल पारस्परिक संबंधों पर आश्रित रहेगी। देखना यह है कि पंचायती राज संस्थाएं अपने आदर्शों के अनुरूप लोगों को ढालती हैं या वे परंपरागत सामाजिक ढांचे में प्रभुता-प्राप्त वर्गों की हितपोषक होकर रह जाती हैं। साम्प्रदायिक या जातिगत आधार पर पंचायती संस्थाओं पर नियंत्रण और उनके संचालन की चेष्टा भी घातक

सिद्ध हो सकती है। विभिन्न सामाजिक वर्गों द्वारा अपने-अपने हितों के पोषण का प्रयास पंचायती संस्थाओं में टकराव के बीज बो सकता है। धनी व साधन सम्पन्न वर्ग द्वारा सारी पंचायती राज संस्थाओं को नियंत्रित व संचालित करने का प्रयास भी हो सकता है। परंतु चुनाव प्रक्रिया और अनिवार्य चुनाव की व्यवस्था यह सुनिश्चित करेगी कि मतदाताओं की अनदेखी न हो। कम से कम चुनाव के मौके पर आम ग्रामीण मतदाता की आवाज तो सुननी ही पड़ेगी। लोकतांत्रिक शासन और जनता के शासन का सार भी इसी तथ्य पर आश्रित है।

पंचायती राज संस्थाओं के कुशल संचालन के लिए प्रशिक्षण और उपयुक्त वातावरण के निर्माण का विशाल दायित्व जहां राज्य सरकारों पर है वहीं स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। स्वयंसेवी संगठन आम ग्रामीण को जागरूक बनाने तथा निहित स्वार्थों की पोल खोलने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। ये संगठन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में रचनात्मक भूमिका का निर्वाह भी कर सकते हैं।

देश का शासन सूत्र संचालित करने का काम लगभग पांच हजार निर्वाचित लोगों तक सीमित न रख कर पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम 22.5 लाख निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथों तक पहुंचाने का काम कोई छोटी बात नहीं है। यह एक ऐतिहासिक कार्य होगा जो पूरे भारत की तकदीर बदलने की क्षमता रखता है। इस काम में अड़चनें और चुनौतियां आएंगी परंतु इनसे निबटने के संघर्ष में वे रास्ते भी खुलेंगे जो देश को विकास की मंजिल तक पहुंचाएंगे।

**सी-2, प्रेस अपार्टमेंट्स,**
**23 पटपड़गंज, दिल्ली - 110092**

## सुनिश्चित रोजगार योजना के तहत 35 लाख व्यक्ति पंजीकृत

सुनिश्चित रोजगार योजना के अंतर्गत देश के विभिन्न राज्यों में अब तक 35 लाख से ज्यादा व्यक्तियों को पंजीकृत किया जा चुका है। सबसे अधिक व्यक्ति उड़ीसा में पंजीकृत किए गए। उनकी संख्या 7,14,152 है। इसके बाद आंध्र प्रदेश (6,45,221), मध्य प्रदेश (5,37,000) और कर्नाटक (5,03,900) का स्थान है।

योजना के तहत केन्द्र सरकार और राज्यों के हिस्से के रूप में 23 राज्यों और 4 केन्द्र शासित प्रदेशों के लिए अब तक कुल 547.32 करोड़ रुपये की राशि जारी की गई है। इस योजना का खर्च केन्द्र और राज्य 80:20 के आधार पर उठाते हैं और यह राशि जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों को सीधे ही दी जाती है।

यह योजना अब देश के 261 जिलों के 1778 ऐसे ब्लाकों में चलाई जा रही है जहां संशोधित सार्वजनिक वितरण प्रणाली शुरू की गई है। इस योजना के तहत गांवों के गरीब वयस्क स्त्री-पुरुषों को 100 दिन के अकुशल शारीरिक कार्य के रोजगार का आश्वासन मिलता है। योजना का प्राथमिक उद्देश्य कृषि मजदूरों और अन्य कामगारों को काम उपलब्ध न होने के समय पर रोजगार उपलब्ध कराना है।

**साभार : पत्र सूचना कार्यालय**

# पंचायती राज : एक सपना पूरा हुआ

✍ सैयद सलमान हैदर

काफी अरसे तक भारत में राजा-महाराजाओं का शासन रहा। दासता और गुलामी के एक लंबे दौर से भारतीय जनमानस गुजरा है। एक ऐसा दौर जिसमें मानवाधिकारों का कोई नाम लेने वाला नहीं था। शासनादेश या शाही फरमान ही सब कुछ होता था, भले ही वह जनहित के विरुद्ध क्यों न हो। न तो उसके खिलाफ कोई अपील होती थी और न कोई सुनवाई। वक्त बदलते-बदलते शाही दौर खत्म हुआ, अंग्रेज गए और हमें आजादी मिली। लोकतंत्र आया और सत्ता की सर्वोच्च शक्ति जनता के हाथों में आ गयी। आजादी के इन सैंतालीस वर्षों में लोकतंत्र का सही लाभ देश की अधिकांश आबादी यानी ग्रामीण जनता को नहीं मिल सका। वजह थी, ग्राम स्तर पर पंचायतें, जोकि लोकतंत्र का मूलाधार हैं, मजबूत नहीं हो सकीं थीं।

यों, पंचायतों की परिकल्पना अपने देश में कोई नयी नहीं है। 'पंच परमेश्वर' के रूप में गांवों में पंचों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। पंचों की निष्पक्षता की पुष्टि हमारे साहित्य से होती है। अंग्रेजों के शासनकाल में जमींदारी और रैयतवाड़ी प्रथाओं के कारण यह लोकतांत्रिक परंपरा छिन्न-भिन्न हो गयी थी और निर्बल वर्ग जो कि अन्याय का सर्वाधिक शिकार होता था, को न्याय मिलने में कठिनाई होने लगी। साथ ही पहले जो आपसी झगड़े ग्राम पंचायत स्तर पर सौहार्दपूर्ण माहौल में सुलझ जाते थे, वह तहसील और जिला न्यायालयों में पहुंचने लगे। विकास की धुरी गांव से खिसकते-खिसकते जिला मुख्यालयों तक जा पहुंची। गांव की स्थानीय जरूरतों और प्राथमिकताओं का फैसला शहरों के बंद कमरों, बाबुओं की फाइलों में होने लगा। बिचौलिए और नौकरशाहों की थैलियां गर्म होने लगीं। इन सारी समस्याओं को ध्यान में रखकर गांव के गरीब और सर्वहारा वर्ग को न्याय दिलाने के लिए लोकतंत्र की पहली सीढ़ी पंचायती राज को मजबूत करना और उसे प्रतिष्ठापित करना जरूरी हो गया।

पंचायती राज को क्रियान्वित करने में स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने महत्वपूर्ण पहल की। उन्होंने ग्रामवासियों की परेशानियों को भली-भांति समझा और उन्हें उनके अधिकार वापस दिलाने का संकल्प दोहराया। उनके द्वारा बोया गया बीज आज एक फलदायक वृक्ष का रूप ले चुका है। महात्मा गांधी और राजीव गांधी ने जो सपना देखा था, उसे प्रधानमंत्री नरसिम्ह राव की सरकार ने पूरा कर दिखाया है। संविधान के 73वें संशोधन के रूप में भारतीय संसद ने इसकी पुष्टि की और इस वर्ष 23 अप्रैल को यह कानून पूरे देश में लागू हो गया है। राज्यों से यह अपेक्षा की गयी है कि वे केन्द्र द्वारा बनाए गए कानून के अनुरूप अपने-अपने पंचायती राज कानूनों में यथाशीघ्र संशोधन कर इसे लागू कराएं। साथ ही राज्यों से यह भी अपेक्षा की गयी है कि वे नए कानून के अनुसार शीघ्र पंचायतों के चुनाव करा दें। यही नहीं, नए कानून के अनुसार निधारित समयावधि पर नियमित रूप से चुनाव कराना अनिवार्य कर दिया गया है। अनेक राज्यों ने न सिर्फ अपने कानूनों में संशोधन किया है, बल्कि निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए अलग से चुनाव निदेशालय के गठन की घोषणा भी कर दी है।

नए पंचायती राज कानून को संसद ने पिछले वर्ष 24 अप्रैल को पारित किया था। अब तक सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों ने अपने कानूनों में संशोधन कर लिए हैं। इस कानून के लागू हो जाने के बाद अब हर गांव की ग्राम सभा होगी, जिसके अधिकार और कर्तव्य राज्य विधानमंडल तय करेंगे। प्रत्येक राज्य में पंचायतें-ग्राम,मध्य और जिला स्तर पर बनाई जाएंगी। इससे देश भर में हर जगह पंचायती राज का ढांचा एक समान हो जाएगा। बीस लाख से कम जनसंख्या वाले राज्यों को मध्य स्तर पर पंचायत नहीं बनाने का विकल्प दिया गया है। सभी स्तरों पर चुनाव प्रत्यक्ष मतदान से होंगे पर सिर्फ मध्य और जिला स्तर पर अध्यक्ष के पदों के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव होगा। ग्राम स्तर पर अध्यक्ष के चुनाव की प्रक्रिया राज्यों पर छोड़ दी गयी है। हर स्तर पर आबादी के अनुपात में अनुसूचित जाति, जनजाति के लिए सीटें आरक्षित होंगी। महिलाओं को भी बराबर का अधिकार देने के उद्देश्य से कुल सदस्यता की एक तिहाई सीट महिलाओं के लिए आरक्षित कर दी गयी हैं। इसी तरह अध्यक्ष पद के लिए भी आरक्षण होगा। हर पंचायत का कार्यकाल पांच वर्ष का होगा।

अगर विशेष कारणों से राज्य के कानून के तहत उसे भंग नहीं किया गया तो सामान्य प्रक्रिया में पंचायत का कार्यकाल पूरा होने से पहले उसे भंग किए जाने की स्थिति में छः महीने के भीतर चुनाव कराना अनिवार्य होगा। राज्य विधानमंडलों को अधिकार दिए गए हैं कि वे पंचायतों को लेवी तथा स्थानीय कर वसूलने और उसे खर्च करने के लिए प्राधिकृत करें। राज्य के कोष से अनुदान देने का अधिकार भी विधानमंडलों को होगा। यही नहीं, पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा के लिए हर पांच वर्ष में वित्त आयोग के गठन का प्रावधान भी किया गया है। इसके अलावा केन्द्रीय वित्त आयोग भी पंचायतों के वित्तीय संसाधन बढ़ाने के बारे में सुझाव दे सकता है। आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की राज्य सरकारों द्वारा सौंपी गयी योजनाओं के अलावा पंचायतों को संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में निर्धारित विषय भी सौंपे जा सकते हैं। पंचायतें अब अपने इन अधिकारों का प्रयोग बेहतर ढंग से कर सकती है। स्थानीय स्वशासन के रूप में पंचायतों को स्वतः वित्त पोषित और आत्मनिर्भर इकाइयों के रूप में विकसित करना ही कदाचित इस नये कानून का उद्देश्य है। गांवों की न्याय, विकास, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी अनेक समस्याओं का निराकरण इससे संभव है। साथ ही बिचौलिए और नौकरशाहों से भी मुक्ति मिलने की पूरी आशा है।

इस दिशा में पहले की गयी कोशिशें लगभग निष्फल साबित हुई थीं। इसके पीछे दृढ़ संकल्प की कमी और पंचायतों को आर्थिक आजादी न देना एक प्रमुख कारण था। पंचायती राज की पुनर्स्थापना के बाद राजनैतिक सत्ता और आर्थिक विकेन्द्रीकरण का एक नया अध्याय शुरू होगा और पूरी तरह इसके लागू हो जाने के बाद राजनैतिक सत्ता देश के 30 लाख व्यक्तियों के हाथों में होगी। इतना ही नही, ग्रामों पर खर्च की जाने वाली धनराशि में भी तीन गुनी बढ़ोत्तरी की जाएगी। जहां आठवीं योजना में ग्रामीण विकास के लिए 30 हजार करोड़ रुपये दिए गए थे, वहीं नौवीं पंचवर्षीय योजना में इस मद में 90 हजार करोड़ रुपये दिए जाने का प्रस्ताव है।

गांवों को अपने भाग्य निर्धारण का अधिकार देकर दरअसल महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज के सपने को मूर्त रूप देने की दिशा में एक पहल की गयी है।

**ए-14/20, भारद्वाजी टोला,**
**वाराणसी - 221 001**

लघुकथा

# ज़हर

## ✍ नीरमा कुमारी पाण्डेय

"अबे यहां कहां बैठ रहा है; तेरे बाप की सीट है, चल उठ यहां से।"

"मगर बाबू, मैंने टिकट खरीदा है।"

"तो क्या हमने नहीं खरीदा, न जाने कहां-कहां से बदबूदार गंदे आदमी डिब्बे में आ जाते हैं। देखा जाए तो इन्हीं लोगों ने सोसायटी में गंदगी फैला रखी है।"

पैसेंजर अपनी मंथर गति से गंतव्य की ओर चली जा रही थी। बेचारा भोलाभाला वृद्ध लड़कों की झिड़की सुनकर वहीं गाड़ी के फर्श पर बैठ गया। सब लड़के हेरोइन पीने में मशगूल हो गये।

इलाहाबाद में गाड़ी रुक गयी और अकस्मात चेकिंग आरंभ हो गयी। टिकट कलेक्टर ने लड़कों से टिकट पूछा।

"एल. टी. है अंकल" – लड़कों ने जबाव दिया।

"बताइए"

"नहीं है।" और फिस्स से हंस दिये।

टी. टी. आई. ने साथ वाले पुलिस वालों को इशारा किया। और उन्होंने झपट्टा मारकर उन्हें हिरासत में ले लिया।

"बाबा, आप का टिकट?"

"ये रहा" और उस ग्रामीण वृद्ध ने शान से टिकट निकाला, दिखाया और लड़कों द्वारा खाली की गयी सीट पर बैठते हुए टी. टी. आई. से बोला, "साब, सोसायटी में गंदगी कौन फैला रहा है?"

# पंचायती राज की नई व्यवस्था

**डॉ. राम विहारी विश्वकर्मा**

हमारे देश में पंचायती राज व्यवस्था का मूलरूप प्राचीन काल से ही पाया जाता है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में पंचायतों के बारे में उद्धरण मिलते हैं। ऋग्वेद, वाल्मीकि विरचित रामायण और महाभारत में 'पंच', और 'पंचायत' शब्दों के उल्लेख विद्यमान हैं। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में इस पर विस्तार से जानकारी उपलब्ध है। ग्यारहवीं शताब्दी में 'नीतिसार' में शुक्राचार्य ने इनका उल्लेख किया है। 'पंचतंत्र' और 'भोजप्रबंध' आदि ग्रंथों में पंचायतों की चर्चा है। हमारे देश में वर्तमान शताब्दी में जब स्वतंत्रता की लड़ाई शुरू हुई तो 1920 में नागपुर के कांग्रेस अधिवेशन में इससे सम्बन्धित एक प्रस्ताव पारित किया गया। महात्मा गांधी की रामराज्य की परिकल्पना में भी पंचायती व्यवस्था का रूप समाविष्ट था। 1931 में गांधी जी के नेतृत्व में घोषणा का यह स्वर मुखर हुआ कि हमारा जब भी 'स्वराज' होगा तो उसका तात्पर्य 'ग्राम स्वराज' होगा जो पंचायती राज व्यवस्था के अनुरूप होगा। जब देश स्वतंत्र हुआ तो देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के कार्यकाल में पंचायती राज व्यवस्था लागू की गई। पं. नेहरू का विचार था कि हमारे गांवों का विकास पंचायती राज व्यवस्था से ही संभव है। गांवों के विकास कार्यक्रमों को लागू करने के लिए पंचायती राज व्यवस्था से बेहतर कोई तरीका नहीं हो सकता।

22 दिसंबर 1992 को लोकसभा ने संविधान में संशोधन का एक विधेयक पारित किया। राज्यसभा ने भी उसे अगले ही दिन पास कर दिया। देश के आधे से अधिक विधानमंडलों ने उस विधेयक का अनुमोदन किया और इसे 24 अप्रैल, 1993 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल गई। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के अनुसार पंचायतों को सभी स्तरों पर वित्तीय और प्रशासनिक अधिकारों के हस्तांतरण को सवैधानिक मान्यता दे दी गई है। हमारे देश की कुल जनसंख्या का लगभग 75 प्रतिशत गांवों में ही रहता है और इन लोगों का विकास तभी संभव होगा जबकि उनके लिए योजनाएं तैयार कर उन्हें सही ढंग से लागू किया जाए। इस संविधान संशोधन के जरिए ग्राम पंचायतों को यह अधिकार दिया गया है कि वे गांवों के विकास के लिए आवश्यक योजनाए बनाएं और उसके लिए आवश्यक रकम उपलब्ध कराई जाए। देश के लगभग सभी राज्यों ने अपने कानूनों में आवश्यक परिवर्तन कर लिया है और वे पंचायती राज कानून को अपने यहां लागू करने के लिए कृतसंकल्प हैं। हाल ही में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक समिति बनाई गई थी। इस समिति ने सुझाव दिया कि सभी राज्यों में लोगों में जागरूकता पैदा करना अत्यन्त आवश्यक है और ग्राम पंचायतों के लिए साधन बढ़ाने होंगे। ग्राम पंचायतों को कृषि, भूमि और जल संरक्षण, पेयजल, स्वच्छता, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, महिला कल्याण, शिक्षा, गरीबी-निवारण, संचार और रोजगार कार्यक्रमों आदि को अपने हाथ में लेना चाहिए। देश को आजादी मिलने के बाद पंचायती राज व्यवस्था को अभी तक पर्याप्त अधिकार नहीं दिए जा सके थे। इसीलिए अभी तक ग्राम पंचायतें ग्रामीण विकास का सक्षम माध्यम नहीं बन पाई थीं। ग्रामीण विकास के लिए समय-समय पर पर्याप्त धन आवंटित किया गया है लेकिन लक्ष्य ग्रुप तक उनका समुचित लाभ नहीं पहुंच पाया। ग्राम पंचायतों को आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की योजनाएं सौंपी जानी चाहिए। ग्यारहवीं अनुसूची में जो 29 मदें दी गई हैं उनके अंतर्गत काम निर्धारित करना और धन तथा तकनीकी सहयोग उपलब्ध कराना नितान्त आवश्यक है। अभी तक पंचायतों के जरिए जिन कार्यक्रमों पर अमल करने की चेष्टा की गई है उनमें से अधिकतर का लाभ गरीबों की बजाय सम्पन्न लोग उठाते हैं, जिसकी वजह से सर्वहारा वर्ग, कमजोर वर्ग, पिछड़े वर्ग और महिलाओं को अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाया।

संविधान के 73वें संशोधन के फलस्वरूप ग्राम पंचायतों के माध्यम से जनता की भागीदारी बढ़ेगी। हमारे देश में गांव ही राष्ट्र के विकास की आधारशिला हैं। इसलिए इनका विकास अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत चुनाव कराने का प्रावधान पहले भी था लेकिन कई राज्यों में अनेक वर्षों से चुनाव नहीं कराए गए। भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गांधी का ध्यान इस ओर गया। देश के गांवों में जाकर लोगों से बातचीत करने के बाद उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि पंचायती राज व्यवस्था को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए संविधान में संशोधन करना आवश्यक है। इसे ध्यान में रखते हुए संविधान में संशोधन किया गया। इसके अनुसार सभी पंचायती राज संस्थाओं के लिए हर स्तर पर हर

पांच वर्ष के बाद चुनाव कराना अनिवार्य होगा। अगर किसी वजह से कोई पंचायत पांच वर्ष की अवधि से पहले ही भंग कर दी जाती है तो भंग करने की तारीख से छह महीने के अंदर उसका चुनाव अवश्य कराना होगा। जिस तरह हर राज्य से विधायकों और सांसदों के चुनाव कराए जाते हैं उसी तरह पंचायतों के पदाधिकारियों के लिए भी चुनाव कराए जाएंगे। सभी पंचायतों के चुनाव के संचालन, निर्देशन, नियंत्रण और मतदाता सूचियों को तैयार करने के लिए हर राज्य में अलग चुनाव आयोग बनाया जाएगा। चुनाव में महिलाओं के लिए एक तिहाई स्थान आरक्षित रहेगा। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए भी आबादी के अनुपात में स्थान सुरक्षित रखे जाएंगे। सभी राज्य इस बात पर सहमत हो गए हैं कि हर राज्य में इस उद्देश्य से राज्य चुनाव आयोग का गठन किया जाएगा। राज्यों का विचार है कि ग्राम पंचायतों के चुनाव दलविहीन आधार पर कराए जाएं ताकि ग्राम स्तर पर झगड़े न बढ़ने पाएं और लोगों का ध्यान विकास की ओर रहे।

राज्यों में पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत न्याय पंचायतें कायम की जानी चाहिए जो स्थानीय विवादों को शीघ्र निपटाएं और न्याय व्यवस्था पर ज्यादा खर्च न बढ़ने पाए। पंचायती राज संस्थाओं को तीन स्तरीय बनाने का प्रावधान किया गया है। ये तीन स्तर ग्राम, प्रखंड और जिला स्तर पर होंगे। इसमें ग्राम सभा प्रमुख इकाई होगी। पंचायतों के सुचारू रूप से कार्यसंचालन के लिए आवश्यक है कि उन्हें पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराए जाएं और उन्हें तदर्थ आधार पर नहीं बल्कि कार्यक्रम के आधार पर निश्चित रकम उपलब्ध कराई जाए। इसके लिए सभी राज्यों में वित्त आयोग गठित करने का प्रावधान है। इस आयोग में विशिष्ट अनुभवी व्यक्तियों को रखा जाएगा जो समय-समय पर पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करेंगे और हर पांच वर्ष बाद राज्य सरकारों को आवश्यक वित्तीय सिफारिशें करेंगे। इससे पंचायतों के कामकाज में पर्याप्त सुधार आएगा और वे आर्थिक तथा प्रशासनिक दृष्टि से सक्षम संस्था का रूप ले सकेंगी।

पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत जो योजनाएं तैयार की जाती हैं उनके बारे में लोगों को समुचित जानकारी प्रायः उपलब्ध नहीं हो पाती है। इसे ध्यान में रखते हुए वर्तमान कानून में प्रावधान रखा गया है कि विभिन्न स्तरों पर पंचायती राज प्रशिक्षण केन्द्र खोले जाएं जिनमें पंचायती राज से सम्बद्ध सभी प्रमुख पदाधिकारियों को आवश्यक प्रशिक्षण दिए जाएं।

पंचायती राज व्यवस्था के वर्तमान कानून के अंतर्गत राज्य स्तर पर जो वित्त आयोग बनाया जाएगा उसको व्यापक अधिकार दिए गए हैं। यह आयोग ग्राम पंचायतों को आर्थिक दृष्टि से सक्षम बनाने के लिए उन्हें स्थानीय कर लगाने का अधिकार देगा। इस प्रकार के करों से जो आय होगी उससे ग्राम पंचायतों की आर्थिक शक्ति बढ़ेगी। आठवीं योजना में ग्राम पंचायतों के लिए 30,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। नवीं योजना में इस रकम को बढ़ाकर 90,000 करोड़ रुपए करने पर विचार किया जा रहा है।

हमारे देश की सांस्कृतिक परंपरा महान रही है। यहां के लोगों की बौद्धिक क्षमता सांस्कृतिक दृष्टि से प्राचीन सांस्कृतिक परंपरा वाले अन्य देशों की अपेक्षा काफी प्रौढ़ और विकसित रही है। अब समय आ गया है, जब हमें लोगों में नई जागृति लाने का शंखनाद करना होगा। देश के ग्रामीण लोगों की सूझबूझ और बुद्धिमत्ता का यथेष्ट लाभ उठाना होगा। इसके लिए गांवों के लोगों की 'सांस्कृतिक साक्षरता' का भरपूर उपयोग किया जाना चाहिए। गांवों के लोगों को इस बात का भली-भांति एहसास है कि उनकी आवश्यकताएं और प्राथमिकताएं क्या हैं। इसका फैसला उन्हें खुद ही करने देना चाहिए। जनजागरण आने पर जनता जाग उठेगी और अपने भविष्य को सुधारने की दिशा में वह बहुत कुछ प्रयास कर सकती है। हाल ही में सरकार ने सभी राज्यों को एक परिपत्र भेजकर निर्देश जारी किया है कि पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव यथाशीघ्र कराए जाएं ताकि जनसामान्य के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए आवश्यक कार्यक्रमों को शीघ्रातिशीघ्र लागू किया जा सके।

**103 एच, सैक्टर-4,**
**डी. आई. जेड एरिया,**
**नई दिल्ली - 110001**

# जहां गांव वाले खुद ही अपने झगड़ों को निपटा लेते हैं

✍ अशोक कुमार यादव

आम लोगों को सस्ता एवं सुलभ न्याय तब ही प्राप्त हो सकता है जबकि वे स्वयं कानूनों से परिचित हों। कानून के बारे में ज्ञान होने का दोहरा फायदा है। पहला तो यह कि अपराध नहीं हो पायेगा और दूसरा यह कि कानून से क्या राहत मिल सकती है, उन सहायताओं का लाभ उठाया जा सकेगा।

राजस्थान में आदिवासी जनसंख्या बहुल डूंगरपुर जिले में आम लोगों को उनके फायदे के लिए बनाये गये कानूनों की जानकारी देने के लिए पिछले डेढ़-दो वर्षों से व्यापक तौर से विधिक सहायता कार्यक्रम चलाया जा रहा है। लाभकारी कानूनों के संबंध में जन-चेतना जगाने के लिए जिला विधिक सहायता समिति के माध्यम से गत दो वर्षों से डूंगरपुर जिले के 79 गांवों में विधिक साक्षरता शिविरों का आयोजन किया गया। इन शिविरों में आये ग्रामीणों को विभिन्न प्रकार के लाभकारी कानूनों के बारे में जानकारी दी गयी।

ग्रामीणों को कानूनी सलाह उपलब्ध कराने की दिशा में ठोस तरीके से एक और अभिनव प्रयोग किया जा रहा है। उसके तहत जिले के बड़ी आबादी वाले 44 गांवों में निःशुल्क कानूनी सलाह केन्द्र खोले गये हैं। इन कानूनी सलाह केन्द्रों का प्रयोग जिले में सफल रहा है, और अपनी प्रभावी भूमिका अदा करके शोषित और पीड़ित आदिवासियों के लिए ये केन्द्र सच्चे दोस्त साबित हो रहे हैं।

गांवों में स्थापित इन मुफ्त कानूनी सलाह केन्द्रों को चलाने का जिम्मा गांव में ऐसे व्यक्तियों को सौंपा गया है जोकि अनुभवी, शिक्षित और समाज सेवी हैं। प्रत्येक केन्द्र पर कानून की साधारण भाषा वाली पुस्तकें, फोल्डर आदि रखवाये जाते हैं। प्रारंभ में इन केन्द्रों की स्थापना का उद्देश्य यह रहा कि केन्द्र संचालक कानून की पुस्तकों को पढ़कर ग्रामीणों को विभिन्न लाभकारी कानूनों की जानकारी दें और उनकी कानून संबंधी समस्याओं का निराकरण करें। जो ग्रामवासी पढ़ना जानते हैं वे केन्द्रों पर आकर पुस्तकों का अध्ययन कर कानूनी ज्ञान प्राप्त करें। अब स्थिति यह है कि गांवों में ये मुफ्त कानूनी सलाह और जानकारी देने के साथ ही गांव में उत्पन्न विवादों को वहीं आपसी समझौते से निपटाने के कार्य करने लगे हैं। कानूनी सलाह केन्द्रों की बदौलत अधिकांश गांवों में अब यह स्थिति है कि वहां से गत डेढ़-दो वर्षों में एक भी विवाद न तो पुलिस में और न ही न्यायालयों में पहुंचा है। केन्द्रों पर जिन-विवादों का समझौते द्वारा निपटारा कराया गया है उनका नियमित रूप से पंजिका में ब्यौरा भी अंकित किया गया है।

सचमुच में ये निःशुल्क कानूनी सलाह केन्द्र गांवों मे झगड़ों को निपटाने के केन्द्र भी साबित हो रहे हैं। बोडीगामा बड़ा गांव के मुफ्त कानूनी सलाह केन्द्र को ही लीजिये। इस केन्द्र पर गत दो वर्षों में गांव में उत्पन्न हुए आठ से ज्यादा विवादों का निपटारा समझौते से करा दिया गया और उन्हें न्यायालय तक नहीं जाने दिया गया। निपटाये गये विवाद बहुत ही रोचक हैं। रूपा और हूका नाम के आदिवासियों में शादी के माहौल में गालीगलौच हुई और झगड़ा बढ़ गया। लाठियों तक नौबत आ गई। इसके बाद दोनों पक्षों को बिठाकर आपस में समझौता करा दिया गया। अम्बालाल पंचाल और भगवान शर्मा के बीच हुए जमीन के झगड़े में समझौता कराया गया। रतना आदिवासी की बकरियां गंभीर सिंह के खेत में घुसीं तो फसल का नुकसान हुआ। इनका विवाद समझौते से हल हो गया। मनोज शर्मा और मुकेश के बीच हुए झगड़े को आपसी समझौते से माल गांव में जाकर निपटाया गया। शंकर कलाल और मनजी आदिवासी ने शराब पीकर ऐसी जोरदार मारपीट की कि पुलिस आ गयी, परंतु मुफ्त कानूनी सलाह केंद्र ने समझौता करा दिया और मामला पुलिस में दर्ज नहीं होने दिया। ट्रक से नाथूसिंह की गाय का पैर टूट गया। इसका समझौता ट्रक मालिक से कराके उसको 700 रुपये मुआवजा दिलाया गया। हमीर सिंह व मंगलजी का झगड़ा एक शामलाती आम के पेड़ को लेकर हुआ पर ये मामला पुलिस में आये उससे पहले ही दोनों में समझौता करा दिया गया।

ओडवाड़िया के मुफ्त सलाह केन्द्र पर पिछले डेढ़ वर्ष में ग्यारह प्रकरणों में आपसी विवादों का सुलटारा कराया गया और एक भी प्रकरण को गांव से थानों अथवा न्यायालयों में नहीं पहुंचने दिया है। इनमें से छह प्रकरण तो जमीन व मारपीट के हैं, जिनकी सुलह आपसी समझौते से करा दी गयी। इनके अलावा अनेक

पति-पत्नी के झगड़ों को भी समझौता कराके निपटाया गया है।

बिलड़ी गांव में चलाये आ रहे मुफ्त कानूनी सलाह केन्द्र की बदौलत न्यायालय में तीन साल से चल रहा जशोदा व केसर का मारपीट का मुकदमा आपसी राजीनामा से निपट गया।

दोबड़ा गांव में तो वर्ष 1964 से ही प्रत्येक एकादशी के दिन गांव वालों की सामूहिक बैठक का आयोजन कर विवादों को निपटाने की परंपरा है।

पचलासा छोटा में मुफ्त कानूनी सलाह केन्द्र में गत एक वर्ष में गांव में हुई मारपीट के पांच प्रकरणों को आपसी समझौता कराके पुलिस में नहीं जाने दिया गया। पूंजपुर गांव के कानूनी सलाह केन्द्र की बदौलत अलग-अलग प्रकार के छह प्रकरणों को अपने ही स्तर पर निपटाने में सफलता मिली।

देव सोमनाथ गांव में कानूनी सलाह केन्द्र कायम होने के बाद दो विवाद हुए और उनको आपसी समझौते से सुलटा दिया गया।

खजूरी गांव के कानूनी सलाह केन्द्र के संचालक ने अपनी सूझबूझ से दहेज का विवाद सुलझाया है। प्रेमा की लड़की का विवाह बलवाड़ा गांव में हुआ। दोनों पक्षों में दहेज को लेकर विवाद चल रहा था पर केन्द्र ने हस्तक्षेप किया और प्रेमा को दहेज के बर्तन, आभूषण वापस दिलवाये और दोनों पक्षों में समझौता करा दिया।

आसपुर तहसील के मूंगेड गांव में मुफ्त कानूनी सलाह केन्द्र द्वारा गत दो वर्षों मे नौ रोचक विवादों को समझौते से सुलझा दिया गया है।

भेहणा डेढ़ सौ मकानों की आबादी वाला गांव है और यहां भी ग्यारस संगठन कायम है। पिछले एक साल से इस गांव का एक भी विवाद न्यायालय में नहीं पहुंचा है। इस गांव में कानूनी सलाह केन्द्र ने पिछले एक वर्ष में जमीन के दो विवाद भी सुलटाये हैं। भेहणा में ग्यारस संगठन के माध्यम से 100 वर्षों से आपसी विवाद मिल बैठकर सुलझाने की परंपरा चली आ रही है।

पिछले महीनों डूंगरपुर जिले में जिला विधिक सहायता समिति द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण से पता चला है कि सर्वेक्षित 16 गांवों में से 14 गांवों के मुफ्त कानूनी सलाह केन्द्रों की बदौलत इन गांवों में कोई विवाद न्यायालयों में नहीं पहुंचा है। निठाऊया, गायडी, रीछा व सोलंज गांवों में तो पिछले एक वर्ष में एक भी विवाद ही नहीं हुआ।

सर्वेक्षण से सबसे रोचक तथ्य तो यही उभरा है कि आदिवासी बहुल डूंगरपुर जिले में कई गांवों में आपसी तथा गांव के झगड़ों को एकादशी पर बैठक का आयोजन कर निपटाने की परंपरा वर्षों से चली आ रही है। इन समस्त संगठनों की बैठकों में लोक अदालत की भावना के अनुरूप विवादों का निपटारा किया जाता है। जिला विधिक सहायता समिति की प्रेरणा पाकर दोवड़ा, मैताली और रायणी खावड़ा गांव में भी प्रत्येक ग्यारस को गांव वाले विवादों को निपटाने के लिए बैठकें आयोजित करने लगे हैं। रायणी खावड़ा गांव में तो विचित्र तथ्य यह सामने आया है कि इस गांव में गत नौ पीढ़ियों से कोई विवाद अदालत में नहीं गया है। एकादशी को होने वाली इन बैठकों की वजह से गांवों में सामाजिक और विकास कार्यों, समाज सुधार आदि पक्षों पर विचार विमर्श होता है जिससे ये केन्द्र सामाजिक चेतना के केन्द्र भी साबित हो रहे हैं।

दूसरी तरफ पुलिस विभाग द्वारा गांवों में अपराधों का रोकथाम में ग्रामीणों की भागीदारी जुटाने के लिए डूंगरपुर जिले के 50 गांवों में ग्राम स्वयंसेवक बल चलाये जा रहे हैं। जिला साक्षरता समिति के अधीन कार्य करने वाले साक्षरता केन्द्रों में भी विधिक जानकारी उपलब्ध कराने के लिए प्रचार साहित्य उपलब्ध कराया जा रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि विधिक सहायता कार्यक्रम को सभी विभागों के समन्वित सहयोग से चलाया जाए।

**जिला सूचना एवं जन संपर्क अधिकारी**
**डूंगरपुर - 314001**

कहानी

# महातीर्थ

✍ मोहन नायक

घटना उस समय की है जब मैं एक बार अपनी दादी मां को तीर्थ यात्रा कराने चारों धाम अर्थात् बद्रीनाथ, रामेश्वर, जगन्नाथपुरी तथा द्वारिका ले गया था, तो दादी मां इतनी तीर्थ यात्रा में 10 हजार रुपये दान-पुण्य में खर्च कर चुकी थीं। कहीं गुप्तदान तो कहीं मूर्तिदान तो कहीं पंडे दान आदि में।

दादी मां दान करने में कम न थी मगर वह हमें कभी बासी रोटी भी फेंकने नही देतीं और न ही कभी चाकलेट खाने के लिए पैसे दिये थे। परंतु इतने कंजूस होने के बावजूद धर्म और पुण्य के नाम पर उसने हजारों रुपये दान कर दिये थे। वह असहाय गरीबों और भिखारियों को भले ही दुत्कार देतीं मगर ब्राह्मण और राम नाम लेने वाले तथा चंदन टीके वाले भक्तों का बहुत सम्मान करतीं और दान देती थीं। लेकिन मेरे विचार दादी मां के विचारों से ठीक विपरीत थे। फिर भी तीर्थ यात्रा का काम मजबूरी में मेरे ही जिम्मे पड़ा था।

हां, तो दादी मां को चारों धाम की तीर्थ यात्रा कराने के बाद इलाहाबाद के कुंभ मेले में पहुंचाना था, जहां उन्होंने महीना भर गंगा-स्नान और साधु-संतों की अमृतवाणी का रसपान करना था। सो हम इलाहाबाद पहुंच गये।

एक दिन रोज की तरह दादी मां और मैं स्नान करके अन्य लोगों के साथ आ रहे थे, तो रास्ते में एक चौदह वर्षीय दुबला-पतला बालक देखा जो फटे-चिथड़े पहने था। उसके चेहरे पर उदासी की झलक स्पष्ट दिखाई दे रही थी, वह बोला :

"इस गरीब को कुछ रुपये दे दीजिए, मां जी।"

दादी मां से कोई ब्राह्मण या राम नाम का कोई भक्त दान मांगता तो उसे सम्मान के साथ दे देतीं , लेकिन फटे-चिथड़े वाले इस लड़के को देखकर क्रोधित होकर बोलीं –

"अबे नालायक! तुझे दीखता नहीं। हम अभी स्नान करके आ रहे हैं और तू बीच में कहां से टपक पड़ा? हमें दान देना है तो मंदिर में जाकर पुजारी जी को दे देंगे, ऐसे फालतू भीख मांगने यहां हजारों चले आते हैं। कामधाम से तो जी चुराते हैं और पढ़ना लिखना तो दूर .....। रोज वीडियो, सिनेमा देखेंगे। घर से पैसा न मिला तो भीख मांगकर या जेब काटकर, अबे हट... हट ....।

मैंने लड़के के चेहरे को देखा तो बरबस ही उसकी ओर आकर्षित हो गया और लड़के से प्यार से पूछा-

"बेटे, तुम्हारा नाम क्या है?"

"जी मेरा नाम कमल है।"

"तुम्हें रुपये क्यों चाहिए?"

"मां की दवा के लिए।"

"तुम्हारे पिताजी या अन्य संबंधी...?"

"पिताजी भोपाल जहरीली गैस कांड में मारे गये और अन्य सम्बंधियों ने दुत्कार दिया।"

"तुम्हें कितने रुपये चाहिए।"

"आपकी मर्जी है साहब, आप जितने दे देंगे, मेरे पास फूटी कौड़ी भी नहीं है। ये देखिये दवा की लिस्ट, इतनी दवा लेना जरूरी हैं अन्यथा मेरी मां का बचना मुश्किल है। मैं अपने पिता को खो चुका हूं, मगर अब अपनी मां को नहीं खोना चाहता।" ऐसा कहकर वह रो पड़ा।

मैंने उसे ढाढ़स बंधाया और फिर दवा की लिस्ट को देखा, उसमें लगभग बीस रुपये मूल्य की दवा लिखी हुई थी। मैंने लड़के को 20 रुपये दे दिये। लड़का बहुत खुश हुआ और धन्यवाद देकर चला गया।

इतनी तीर्थ यात्रा करने के बाद भी मैंने फूटी कौड़ी दान में नहीं दी थी, इस यात्रा में पहली बार उस लड़के को बीस रुपये दिये।

इधर मैं उस लड़के के साथ बातचीत कर रहा था तब तक दादी मां कई ब्राह्मणों से परिचय प्राप्त कर दान दे चुकी थीं। फिर हमने मंदिर में भगवान के दर्शन किये और दादी मां ने अपने काम निपटाये। फिर वहां से आकर साधु-महात्माओं के अमृतवाणी में

लीन हो गये।

दूसरे दिन जब बड़े सवेरे दादी मां और मैं स्नान करने गये तो पानी में कुछ दूर कुछ पड़ा दिखाई दिया। मैंने उसे ध्यान से देखा तो कपड़े से दिखाई दिये। मैं समझा शायद कोई आदमी डूब रहा है फौरन उसकी मदद करनी चाहिए। तुरंत उसके पास गया तो पता चला कि वह आदमी ही है। मैंने उसे जल्दी बाहर निकाला तो देखा वही चौदह वर्षीय कमल नाम का लड़का था, जिसको मैंने पिछले दिन बीस रुपये दिये थे। वह जीवित था उसकी सांसें चल रही थी, मगर बेहोश था और ठंड में उसके हाथ पैर अकड़ गये थे। मैंने उसे अपने शरीर से गर्मी दी जिससे उसे होश आया तो वह रोने लगा और रो-रोकर चिल्लाने लगा – "मुझे छोड़ दो, मुझे छोड़ दो।"

मेरे ढाढ़स बंधाने पर मुश्किल से वह कुछ चुप हुआ तब मैंने उससे पूछा -

"तुम नदी में डूबकर क्यों मरना चाहते हो?" लड़का बोला" आपने मुझे बचाकर बहुत बुरा किया, मुझे मरने देते।"

"लेकिन बात क्या है कमल?"

"अब बताने को क्या रह गया है सा, ब...।"

"कमल तुम मुझ पर भरोसा रखो, मैं तुम्हारी सहायता करूंगा, आखिर बात तो बताओ?"

वह सिसकते हुए बताने लगा : "कल जब आपने मुझे अपनी मां की दवा खरीदने के लिए बीस रुपये दिये तो मैं उस रुपये से खुशी-खुशी दवा लेकर घर की ओर जा रहा था। मेरा घर वहां से काफी दूर था, मैं जब लगभग एक किलोमीटर गया तो भूख के बारे में व्याकुल हो उठा, क्योंकि दो दिनों से कुछ नहीं खाया था। भूख से मुझसे चला नहीं गया मैंने फुटपाथ पर लोगों से सहायता मांगी मगर किसी ने भी मुझे कुछ नहीं दिया। कुछ देर बाद अचानक मेरी आंखों के आगे अंधेरा छा गया और मैं वहीं पर गिर पड़ा।

घंटों बेहोश रहने के बाद किसी ने मेरे मुंह पर पानी छिड़का तो मेरी बेहोशी टूटी और मैं यह जानकर सुन्न रह गया कि दवा गायब है। मैंने आसपास उसे ढूंढा, चिल्लाया, मगर दवा नहीं मिली, मुझे बहुत दुख हुआ।

मैं लोगों से सहायता मांगने के लिए घर-घर, गली-गली भटका मगर कोई लाभ नहीं हुआ। तब तक शाम के 7 बजे चुके थे। कड़ाके की ठंड़ पड़ रही थी, मैं निराश होकर घर पहुंचा। मां सर्दी से कांप रही थी। दवा न मिलने पर वह अंतिम क्षणों में थी। मेरे पैरों की आहट पाकर अपने बेटे को प्यार में वह केवल इतना ही बोली बे...टा....। आ... ने.... में.... ब.... हु.... त.... दे.... र... ल.... गा...... दी....।"

"मां।" कहकर चिल्लाया और मैं उसके हृदय से सिमट गया। हाथ फेरा मगर यह क्या। हाथ ढ़ीला पड़ गया। वह इस दुनिया से विदा ले चुकी थी।

अब इस दुनिया में मेरा कोई नहीं था। जिस मां के आंचल में सिमटने से आत्मिक संतुष्टि होती थी उसका साया भी हट गया था। मैं आधी रात तक रोता रहा। फिर दृढ़ निश्चय करके आधी रात को बूंदा-बूंदी में गंगा में मां की लाश को बहा दिया और मां के अंतिम दर्शन कर मैं भी गंगा मां की गोद में कूद गया। मगर गंगा मां ने भी शरण देने से इंकार कर दिया। आपने मुझे बचाकर बहुत बुरा किया, क्योंकि अब मुझे दो रोटी के लिए फिर दर-दर भटकना पड़ेगा। वह फिर रोने लगा था।

"तो तुम मजदूरी नहीं कर सकते?"

"कोई काम करवाने वाला हो तब न! कोई मुझ पर विश्वास नहीं करता।"

"मैं तुम्हें काम सिखाऊंगा, अपने साथ ले चलूंगा।"

जिस प्रकार कमल सूर्य की रोशनी पाते ही खिल उठता है, उसी प्रकार उसका मुर्झाया हुआ चेहरा मेरी बात सुनकर खिल उठा।

"सच!" उसने आश्चर्य एवं हर्ष मिश्रित भाव से पूछा।

मैंने उसे घर लाकर काम नहीं सिखाया बल्कि उसका नाम विद्यालय में लिखवा दिया। वह पढ़ने में बहुत मेधावी है। मैंने परिवार नियोजन करवा लिया और आज वही मेरी संतान है।

**भु. पो. देवगांव, (सरिया)**
**जिला रायगढ़ (म. प्र.)**
**पिन - 496554**

# नशीली दवाओं का कुप्रभाव कैसे रोकें?

डा० गिरीश मिश्र

पिछले लगभग तीन दशकों के दौरान नशीली दवाओं का कुप्रभाव बड़ी तेजी से बढ़ा है। यद्यपि सही-सही आंकड़ों का अभाव है, फिर भी अनुमान है कि लगभग एक प्रतिशत विश्व जनसंख्या इनकी आदी बन चुकी है। इस प्रकार सारी दुनिया में पांच करोड़ से भी अधिक लोगों को इनकी लत लग चुकी है और वे इनके सेवन को जारी रखने के लिए हर कुकृत्य करने को तत्पर रहते हैं। इन लोगों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। कहा जाता है कि नशीली दवाएं बीसवीं शताब्दी की गम्भीरतम समस्याओं में प्रमुख हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तरों पर सरकारों तथा स्वयंसेवी संस्थाओं के तमाम प्रयासों के बावजूद नशीली दवाओं के उत्पादन और अवैध व्यापार की मात्रा में कोई कमी नहीं आ रही, बल्कि लगातार वृद्धि होती जा रही है। संयुक्त राज्य अमरीका का ही उदाहरण लें। वर्ष 1972 में तत्कालीन राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन ने नशीली दवाओं के विरुद्ध अपना अभियान शुरू किया। बाद में राष्ट्रपति जार्ज बुश ने देश से बाहर तस्करों पर हमले और देश के अन्दर नशीली दवाओं का प्रचार-प्रसार करने वालों को पकड़ने तथा सजा दिलवाने के लिए 1989 में 40 अरब डालर की व्यवस्था की। इसके बावजूद नशीली दवाओं की उपलब्धि और सेवन में वृद्धि होती गयी। आज अमरीकी शहरों में कोकीन उतनी ही सुगमता से मिलता है जितनी आसानी से 1989 में उपलब्ध था।

नशीली दवाओं के उत्पादन और व्यापार में खरबों रुपयों की राशि लगी है और इनके पीछे काफी शक्तिशाली संगठन हैं जिनका प्रभाव-क्षेत्र बहुराष्ट्रीय है। इनको ताकतवर अपराध कर्मियों का समर्थन है जो अपना कारोबार चलाने के लिए कोई भी कुकृत्य करने को तैयार रहते हैं। कहा जाता है कि नशीली दवाओं का धंधा करने वाले संगठनों के पास अनेक देशों से भी अधिक वित्तीय संसाधन हैं। कुछ ही वर्षों की बात है कि एक लैटिन अमरीकी देश की सरकार को वहां के नशीली दवाओं का कारोबार करने वालों ने कहा था कि वे उसके भुगतान संतुलन के घाटे को पूरा करने को तैयार हैं बशर्ते कि सरकार उनके खिलाफ अपना मुहिम बन्द कर दे।

कहना न होगा कि नशीली दवाओं के उत्पादन और व्यापार को काफी प्रभावशाली लोगों का संरक्षण प्राप्त है। इसका सम्बन्ध शस्त्रास्त्रों से लेकर सोने की तस्करी और अनेकानेक अपराधों से है। यह तथ्य भी उजागर हो चुका है कि कई देशों में उच्च पदस्थ सैनिक और अन्य अधिकारी भी इस धन्धे से किसी न किसी रूप में जुड़े पाये गये हैं।

लगभग ढाई साल पहले एक प्रतिष्ठित ब्रिटिश साप्ताहिक में छपी एक रिपोर्ट के अनुसार तस्कर बड़े धूर्त हैं। वे कमीजों में स्टार्च की तरह नशीली दवाओं को सराबोर कर देते हैं, उन्हें पेंट के साथ मिला देते हैं, गोल्डफिश के अन्दर बन्द कर देते हैं या फिर उन्हें पतले रबर की थैली में डालकर निगल जाते हैं।

नशीली दवाओं की तस्करी को रोक पाना इसलिए कठिन हो रहा है कि इससे भारी रकम मुनाफे के रूप में मिलती है। उदाहरण के लिए एक किलोग्राम हेरोइन थाइलैंड से जितने में खरीदी जाती है उससे 27 गुना अधिक कीमत लेकर अमरीका में थोक विक्रेताओं को बेची जाती है। कहते हैं कि यात्रा के हर चरण में कीमत दुगुनी होती जाती है। इसी भारी मुनाफे के कारण इसके कारोबार में लोग जान जोखिम में डालकर भी लगे हुए हैं। इसी वजह से रिश्वत और भ्रष्टाचार में भी कमी नहीं आ रही है।

नशीली दवाओं के धन्धे में लगे लोग कभी नहीं चाहेंगे कि उनका उत्पादन और अवैध व्यापार कम हो। इतिहासकारों के अनुसार वर्तमान थाईलैंड में सबसे पहले 1360 ई० में अफीम के सेवन को अपराध घोषित किया गया फिर भी उसका सेवन किसी न किसी रूप में जारी रहा है। वहां के शासकों ने नशीली दवाओं के उत्पादन को रोकने के लिए सख्त कदम उठाये हैं लेकिन कोई विशेष सफलता नहीं मिल पाई है। थाइलैंड, बर्मा और लाओस की सीमाओं पर स्थित पहाड़ी क्षेत्र अब भी अफीम की खेती का केन्द्र बना हुआ है। यही बात अफगानिस्तान के कुछ इलाकों के ऊपर लागू है।

थाईलैंड की सरकार ने अफीम के खेतों पर बम भी गिराये हैं। उसी तरह अमरीकी सरकार ने लैटिन अमरीका में नशीली दवाओं की खेती को नष्ट करने के लिए कार्रवाई की है मगर उनकी आपूर्ति में कोई कमी नहीं आयी है। खेती की जगहें बदल दी जाती हैं और तस्करी के नये मार्ग ढूंढ निकाले जाते हैं।

ऊपर हमने जो कुछ कहा है उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि केवल कानून और प्रशासकीय कार्रवाई के जरिए नशीली दवाओं के प्रचार-प्रसार को नहीं रोका जा सकता। इसलिए इन कार्रवाइयों के साथ-साथ हमें इस बात पर भी गौर करना होगा कि नशीली दवाओं की मांग क्यों है और किनकी ओर से है। इस ओर ध्यान देने के बाद ही हम कोई कारगर कदम सुझा पायेंगे। कहना न होगा कि अगर मांग को खत्म या कम कर दिया जाए तो आपूर्ति पक्ष प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा।

नशीली दवाओं की मांग सबसे अधिक विकसित देशों में है। इसका यह कतई मतलब नहीं है कि भारत जैसे विकासशील देशों में इनका प्रचार-प्रसार नहीं बढ़ रहा है। हमारे यहां लोग इनके चंगुल में आ रहे हैं मगर विकसित देशों की तुलना में धीमी गति से। अब भी हमारे यहां इनका सेवन करने वालों का प्रतिशत कुल जनसंख्या में काफी कम है।

नशीली दवाओं के आदी बहुसंख्यक लोग शहरों, विशेषकर बड़े नगरों, के निवासी हैं। आयु वर्ग की दृष्टि से इनकी चपेट में सबसे अधिक युवा लोग ही हैं। स्कूल कालेजों के विद्यार्थी सबसे अधिक इनके शिकार हैं। वैसे अधेड़ लोग भी नशीली दवाओं का सेवन करते देखे गए हैं।

कहा जाता है कि नशीली दवाएं फुरसत और मनोरंजन का अंग बन गयी हैं। फ्रैंकलिन जिमरिंग और गार्डन हाकिन्स ने अपनी पुस्तक 'द सर्च फार रेशनल ड्रग कन्ट्रोल' में नशीली दवाओं की समस्या को अमरीकी संस्कृति का एक पुराना रोग बतलाया है। उनके अनुसार जहां कहीं भी वर्तमान अमरीकी संस्कृति का प्रभाव पड़ेगा वहां यह रोग लगेगा। उनका कहना है कि चूंकि अमरीकी या पश्चिमी संस्कृति से बचना मुश्किल है इसलिए इस समस्या का जड़मूल से खत्म करना असंभव है। हां, इसके दुष्प्रभावों को काफी कम किया जा सकता है यदि सही और सटीक नीतियों और कार्यक्रमों को अपनाया जाए।

अब आइये देखें कि युवा लोग इन नशीली दवाओं का सेवन शुरू क्यों करते है। वैज्ञानिक अपने अनुसंधान से इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि नशीली दवाओं के सेवन से तत्काल काफी आनन्द का अनुभव होता है। क्षणिक ही सही, मगर अदम्य उत्साह और शक्ति आ जाती है। यही कारण है कि प्रतियोगिता में शामिल होने वाले खिलाड़ी कुछ कर दिखाने की तमन्ना से इनको लेते हैं। अमरीका के बुच रेनोल्डस, जिन्होंने 400 मीटर की दौड़ में विश्व रिकार्ड तोड़ा था, नशीली दवाओं के सेवन से ही ऐसा कर पाये थे। उन्हें बाद के परीक्षण के परिणामस्वरूप दो साल की जेल की सजा भुगतनी पड़ी थी। इसी प्रकार अमरीका के ही बेन जान्सन को, जिन्हें 1988 के ओलम्पिक खेलों में 100 मीटर की दौड़ में एक बार विजयी घोषित कर दिया गया, परीक्षण के बाद नशीली दवा लेने का अपराधी पाया गया और उन्हें अपनी शानदार जीत से वंचित कर दिया गया। इस प्रकार उनकी नया विश्व रिकार्ड बनाने की लालसा धूल में मिल गयी।

जैसा कि हम संकेत दे चुके हैं, अभूतपूर्व आनन्द की अनुभूति ही व्यसन की ओर ले जाती है। नशीली दवाओं के सेवन से भारी आनन्द की अनुभूति होती है। जब नशा उतर जाता है तब आनन्द-लोक से व्यक्ति वास्तविक जगत और उसकी समस्याओं के बीच आ गिरता है। वह उनसे पलायन कर निरन्तर आनन्द की अनुभूति करना चाहता है। इसलिए वह बार-बार नशीली दवाएं लेने की कोशिश करता है और इस तरह उसे उनकी लत लग जाती है। यह लत ऐसी होती है कि इससे छुटकारा पाना कठिन होता है। नशीली दवाएं न मिलने पर उसका व्यसनी छटपटाने लगता है और वह उन्हें प्राप्त करने के लिए कोई भी अपराध कर सकता है। वह चोरी और हिंसा पर भी उतर आता है।

नशीली दवाओं का धन्धा इन्हीं व्यसनी लोगों के ऊपर टिका हुआ है। इन लोगों के सम्बन्ध में सही आंकड़े प्राप्त करना कठिन है। फिर भी अनुमान किया गया है कि अमरीका में लगभग 20 लाख लोग कोकीन का सेवन नियमित रूप से करते हैं जबकि वहां हर प्रकार की नशीली दवा लेने वालों की संख्या एक करोड़ 30 लाख बतलायी जाती है।

स्नायु वैज्ञानिकों ने आणविक जीव विज्ञान के उपकरणों का इस्तेमाल कर पता लगाया है कि मस्तिष्क की गहराइयों में जाने पर आनन्द की अनुभूति और व्यसन का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। मस्तिष्क की कोशिकाओं के परस्पर सम्बन्धों में मूलभूत परिवर्तन कर नशीली दवाएं व्यसन की ओर ले जाती हैं।

नशीली दवाओं के सेवन से व्यक्ति अपनी असफलताओं, तकलीफों और समस्याओं को भूलकर यह महसूस करता है कि सब कुछ ठीक ठाक चल रहा है और आनन्द ही आनन्द है। वह यथार्थ से भागकर स्वप्नलोक में विचरण करने का आदी बन जाता है जहां से वास्तविक जगत में आना उसके लिए काफी कठिन होता है। चूंकि इन दवाओं के सेवन से शारीरिक प्रक्रियाएं

असामान्य रूप से तेज हो जाती हैं इसलिए उसकी शारीरिक क्षति की शुरूआत होती है और मस्तिष्क काम करना बन्द करने लगता है। व्यसनी व्यक्ति अपने परिवार और समाज से कट जाता है। उसका जी कामकाज में नहीं लगता और एकाकीपन ही उसे अधिक भाता है।

**व्यसन के दो पहलू हैं :** ललक और उससे निकासी। ललक सकारात्मक प्रबलीकरण की प्रक्रिया है जिसका अर्थ है कि आपको कोई चीज पसन्द है तो आपकी प्रवृत्ति उसको बार-बार पसन्द करने की होगी। व्यसनी नशीली दवाओं को इसलिए पसन्द करता है कि वे आनन्द की अनुभूति कराती हैं। इसलिए वह चाहता है कि वह उनका बार-बार सेवन करे।

व्यसन से निकासी या निकलने की प्रक्रिया बड़ी कष्टदायक होती है। दवाएं न मिलने की स्थिति व्यसनी को शारीरिक और मानसिक रूप से झकझोर देती है। इस स्थिति से लड़ना आसान नहीं होता क्योंकि व्यसनी में आत्मशक्ति का काफी अभाव होता है।

अब प्रश्न है कि नशीली दवाओं के प्रचार-प्रसार को कैसे रोका जाए। इसके लिए मांग और पूर्ति दोनों तरह की कार्रवाई होनी चाहिए। बाहर से नशीली दवाओं का प्रवेश रोकने तथा देश के अन्दर इनकी छिटपुट खेती समाप्त करने के लिए सख्त कदम उठाये जाने चाहिए। शहरों में विशेषकर स्कूल कालेजों के परिसरों में इनको वितरित करने वालों की धर पकड़ होनी चाहिए। इसमें पुलिस और स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका अहम है। इनको वितरित करने वाले अधिकतर अपराधिक प्रवृत्ति के लोग होते हैं जो अपना धन्धा जारी रखने के लिए कुछ भी कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में ऐसा कुछ किया जाना चाहिए जिससे उनका आतंक समाप्त हो और लोग उनके खिलाफ अभियान में उत्तर सकें।

जहां तक मांग पक्ष का प्रश्न है युवा लोग इन्हें लेने की ओर प्रवृत्त न हों इसके लिए शिक्षा और प्रचार अत्यन्त आवश्यक है। नशीली दवाओं के दुर्गुणों और दुष्प्रभावों को स्पष्ट तौर पर रेखांकित किया जाना चाहिए। रेडियो, टी.वी., सिनेमा, पाठय पुस्तकों, शिक्षकों और अभिभावकों की भूमिका अहम है। अध्यात्मिक और सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाएं अपने उपदेशों और सत्संगों के माध्यम से युवावर्ग को नशीली दवाओं से दूर रहने की प्रेरणा दे सकती हैं। हाल में आर्य समाज ने इस दिशा में अभियान चलाकर लोगों को नशे से दूर रहने के लिए प्रेरित किया है।

जिन लोगों को नशीली दवाओं की लत लग चुकी है उनके इलाज के लिए व्यवस्था होनी चाहिए। उनके साथ सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार किया जाना चाहिए। उनकी समस्याओं, कठिनाइयों और असफलताओं को समझने तथा उनसे जूझने के लिए आत्मबल संचरित करने की जरूरत है। इसमें डाक्टरों, मनोचिकित्सकों और आत्मीय जनों को एक साथ मिलकर काम करना होगा।

**एम-112, साकेत,**
**नई दिल्ली–110017**

# पाठकों के विचार

इस पत्रिका में "पाठकों के विचार" स्तंभ में पाठकगण ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलुओं पर अथवा इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों पर अपने विचार भेज सकते हैं। ये विचार दो सौ शब्दों से अधिक न हों और सम्पादक, कुरुक्षेत्र, कमरा न० 467, कृषि भवन, नई दिल्ली - 110001 के पते पर भेजें जाएं।

इसके लिए कोई पारिश्रमिक देय नहीं होगा परंतु उन पाठकों को पत्रिका की एक प्रति भेजी जाएगी जिनके विचार इस स्तंभ में प्रकाशित होंगे।

**—सम्पादक**

# सबसे बड़ा संकट–पानी

✍ डा० पुष्पेश पाण्डे

असीमित ब्रह्मांड में ग्रह तथा नक्षत्रों में जीवन केवल पृथ्वी पर है जिसका मुख्य कारण पानी है। पृथ्वी के सम्पूर्ण पानी का आयतन एक अरब 35 करोड़ 75 लाख 6 हजार घन कि. मी. है। जिसमें से केवल 0.65 प्रतिशत भाग मीठे पानी का है। जैविक क्रियाओं के संचालन हेतु पानी की आवश्यकता है। मानव शरीर का 60 प्रतिशत भाग जलीय है। प्रत्येक मनुष्य का औसतन लगभग 2.25 लीटर पानी प्रतिदिन पीने के लिए आवश्यक होता है। ऑक्सीजन तथा हाइड्रोजन नामक दो गैसीय तत्वों से बना पानी वर्षा, झरनों, नदियों, कुओं तथा तालाबों से मिलता है। पानी के गुण उसमें विद्यमान कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थों, लवणों तथा जीव-जंतुओं के प्रकार व उनकी मात्रा पर निर्भर करता है। हमारी दैनिक क्रियाओं, ज्ञान विज्ञान तथा वातावरण के प्रति जागरूकता या लापरवाही का प्रभाव पानी की उपस्थिति तथा गुणों पर पड़ता है जो सीधे हमारे स्वास्थ्य तथा विकास पर प्रभाव डालते हैं।

दुर्भाग्यवश जनसंख्या में वृद्धि, दोषपूर्ण योजनाएं तथा समाज में जागरूकता की कमी से जहां एक ओर पानी के स्रोत कम हो रहे हैं, वहीं दूसरी ओर उपलब्ध पानी प्रदूषित होता जा रहा है। यदि हमारे विकास की शैली यही रही तो कुछ समय बाद शुद्ध पानी दुष्प्राप्य हो जायेगा। मनुष्यों और जानवरों द्वारा पीने के अलावा पानी सिंचाई, पनचक्की, जलविद्युत तथा मछली-पालन के लिए भी एक आधार तत्व है।

पानी के मामले में हमारे देश की गिनती दुनिया के कुछेक संपन्नतम देशों में है। यहां औसत वर्षा 1,170 मि. मी. है - अधिकतम 11,400 मि. मी. उत्तर पूर्वी कोने चिरापूंजी में और न्यूनतम 210 मि. मी. उसके बिल्कुल विपरीत पश्चिमी छोर जैसलमेर में होती। दक्षिण अमरीका को छोड़कर भारत आज विश्व के किसी भी महाद्वीप की तुलना में सबसे अधिक पानी, वर्षा और हिमपात से प्राप्त करता है। यहां वर्षा और बर्फ के बरसने से प्रतिवर्ष लगभग 40 करोड़ हेक्टेयर मीटर जल उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त हिमालय क्षेत्र से बहने वाली अन्य देशों की नदियों के माध्यम से 2 करोड़ हेक्टेयर मीटर जल भी भारत को मिलता है। यह 42 करोड़ हेक्टेयर मीटर जल निम्न प्रकार से जलचक्र में समाविष्ट हो जाता है।

| | |
|---|---|
| वाष्पित होने वाला जल | 7 करोड़ हेक्टेयर मीटर |
| वन, वनस्पति और फसलों में | 16.5 करोड़ हेक्टेयर मीटर |
| झीलों, तालाबों व नदियों में | 13.5 करोड़ हेक्टेयर मीटर |
| धरती में भूमिगत होने वाला जल | 5.0 करोड़ हेक्टेयर मीटर |
| कुल जल | 42.0 करोड़ हेक्टेयर मीटर |

इस प्रकार स्पष्ट है कि हमें प्रचुर मात्रा में जल उपलब्ध है। सिद्धान्तरूप में यह सत्य है पर दुर्भाग्यवश हम इस वरदान का सदुपयोग नहीं कर पा रहे हैं। सन् 2025 तक भी हम अपनी कुल सालाना बारिश के एक चौथाई भाग का भी इस्तेमाल कर सकें तो बड़ी बात होगी। इसका सीधा कारण है कि हम इंद्र देवता से मिलने वाले इस प्रसाद को ठीक से ग्रहण तक नहीं कर पा रहे हैं। हमारे यहां जल का संकट बढ़ता जा रहा है। आज गांवों की बात छोड़िए, बड़े शहर और राज्यों की राजधानियां तक इससे जूझ रही हैं। अब यह संकट केवल गर्मी के दिनों तक सीमित नहीं है। पानी की कमी अब सर्दियों में भी सिर उठा लेती है। 20वीं सदी के अंतिम छोर पर खड़े इस देश में आज भी ऐसी स्थितियां है कि व्यक्ति पानी के अभाव में मर जाए, जानवर तड़पने लगे, पेड़-पौधे सूख जाएं, कंठ की प्यास बुझाने के लिए आदमी को कई मील दूर तक पैदल जाना पड़े और अगर प्यास की मौत से बचने के लिए वह किसी प्रदूषित नदी, रुके हुए तालाब या गंदलाते हुए कुएं का पानी पी ले तो पेचिश या पीलिया से मरने की नौबत आ जाए। यह अतिरंजना नहीं है, बल्कि पानी के प्रसंग में देश के हर प्रदेश की नियति है।

इस दिनों समूचे देश में महसूस किये जा रहे गहरे जल संकट के कई आयाम हैं। पहला पहलू तो यह है कि प्रतिवर्ष लगभग पौने दो करोड़ की वृद्धि के साथ विराट होती जाती जनसंख्या का दबाव हमारे जल-संसाधनों पर इतना अधिक हो गया है कि ये चरमराने लगे हैं। नब्बे करोड़ की विराट जनसंख्या की दैनिक जरूरतों के अलावा कृषि और उद्योगों की जल संबंधी जरूरतें भी सैकड़ों गुना तेज रफ्तार से बढ़ रही हैं। इस कारण सतही और भूगर्भीय जल स्रोतों का अंधाधुंध दोहन हो रहा है। इससे न केवल हमारे सतही जल स्रोत नदियां, तालाब और पोखर सूखते जा रहे हैं, बल्कि भूगर्भीय जल के स्रोत कुएँ, नलकूप आदि भी अब सूखने लगे हैं।

पिछले कुछ वर्षों से भूमिगत जल का उपयोग आतंकित करने वाली गति से बढ़ता जा रहा है। देश की भूमिगत जल संपदा एक मोटे अनुमान के अनुसार यहां पर हर साल होने वाली वर्षा से दस गुना ज्यादा है। अनुमान है कि भारत में 300 मीटर की गहराई में करीब 3 अरब 70 करोड़ हेक्टेयर मीटर जल भंडार मौजूद है। आज भी 350 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई भूगर्भीय जल से की जाती है जबकि अन्य सभी परियोजनाओं द्वारा सिंचाई हेतु प्राप्त जल से मात्र 330 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई की जाती है। इतना ही नहीं देश के कई राज्यों में भूगर्भीय जल का एक बड़ा हिस्सा पीने और उद्योगों के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है। भूगर्भीय जल के लोकप्रिय होने का एक बड़ा कारण है कि इसका जल अन्य स्रोतों की अपेक्षा स्वच्छ तथा शुद्ध होता है क्योंकि पानी मिट्टी की कई परतों को पार करके नीचे पहुंचता है। इस प्राकृतिक छलनी की प्रक्रिया में जल की समस्त अशुद्धियां निकल जाती हैं, लेकिन विडंबना यह है कि बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकता पूर्ति हेतु नलकूपों की बढ़ती संख्या से भूमिगत जल का बेहिसाब दुरूपयोग होने लगा है। कुदरती तौर पर जितना पानी भूमिगत भंडार में भरता है, उससे ज्यादा पानी नलकूप बाहर खींच लाते हैं। इसका मतलब यह है कि यह कीमती भंडार हमेशा के लिए घटता जा रहा है। निःसंदेह भूमिगत पानी का अति उपयोग एक अभिशाप है क्योंकि इसके अति उपयोग का नतीजा यह भी हो सकता है कि उसमें खासकर समुद्रतल के इलाकों में खारा पानी मिल जाए। इससे फिर रहा सहा पानी भी पीने या सिंचाई के लायक नहीं रह पाएगा।

दूसरा पहलू यह है कि औद्योगिक प्रगति ने अपने अस्तित्व के लिए जल स्रोतों का अनियंत्रित दोहन तो किया ही, साथ ही जो कचरा पैदा किया वह भी जल स्रोतों के हवाले कर दिया। चाहे हमारे बड़े तालाब हों या बड़ी झीलें या फिर सारे देश में फैली छोटी-बड़ी नदियां, सब हमारी प्रगति का कूड़ा घर बन गयी हैं। फलस्वरूप प्रदूषण के कारण बढ़ती हुई आबादी को शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराना असंभव-सा दिखने लगा है। जल-प्रदूषण की चिंताजनक स्थिति यह है कि देश में उपलब्ध 70 प्रतिशत पानी प्रदूषित है और 30 प्रतिशत जल में प्रदूषण का यह स्तर विषाक्त होने की हद तक पहुंच चुका है। आज प्रदूषित पानी ही देशवासियों के स्वास्थ्य के लिए सबसे बड़ा खतरा बना हुआ है। हमारे यहां पानी के प्रदूषण के साथ ही पानी की बेहद कमी होती जा रही है, तकरीबन 36 करोड़ लोग पीने के साफ पानी के लिए तरस रहे हैं। हमारे देश की गंगा नदी जो अपने नाम में भी शुद्धता का पर्याय रही है, करीब दो हजार उद्योगों द्वारा गिराये जाने वाले गंदे पानी के कारण विषाक्त हो चुकी है, उद्‌गम से लेकर मुहाने तक गंगा के किनारे पर 692 छोटे बड़े शहर बसे हैं। इन नगरों की सारी गंदगी गंगा में ही प्रवाहित होती है। जाहिर है कि गंगा का तीन चौथाई प्रदूषण इन नगरों की गंदगी की वजह से है। नतीजतन कभी जिस गंगा जल से मन का पाप धुलता था और शरीर के रोग दूर होते थे वह स्नान करने लायक भी नहीं रहा।

इसी तरह विभिन्न नगरों में यमुना के किनारे स्थित उद्योग 60 डिग्री सेंटीग्रेड गरम पानी यमुना में छोड़ रहे हैं। दिल्ली में यमुना नदी को अगर नाला कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। यहां 21 करोड़ गैलन जल-मल प्रतिदिन पंद्रह नालों के जरिये यमुना में डाल दिया जाता है। दिल्ली से प्रतिदिन 400 टन ठोस कचरा निकलता है। इसके निक्षेप का कोई उचित स्थान नहीं है।

गंगा और यमुना की तरह ही देश की सभी छोटी-बड़ी नदियों का यही हाल है। उत्तर प्रदेश में गोमती नदी में प्रदूषण के चलते कई बार मछलियों के मरने की खबर सामने आ चुकी है। यही हालत चंबल नदी और उसकी सहायक नदियों की है। बिहार में सोन और दूसरे राज्यों में दामोदर, हुगली, गोदावरी, कावेरी आदि नदियां भी बुरी तरह प्रभावित हो चुकी हैं।

देश में प्रदूषण के कारण जो हालत नदियों की हो रही है, कमोबेश वही हालत बड़े तालाबों और झीलों की है। एक समय था जब हमारे शहरों और गांवों में तालाब और पोखर बहुत पवित्र समझे जाते थे। लेकिन हमारी वर्तमान जल नीति (अगर ऐसी कोई नीति है तो) किसी और ही दिशा में बढ़ चली है। तालाबों, पोखरों जैसी किफायती छोटी परियोजनाओं की पूरी उपेक्षा की गई है। कहा जाता है कि देश की तीन प्रतिशत भूमि पर बने तालाब पोखर होने वाली कुल वर्षा का 25 प्रतिशत जमा कर सकते हैं। नए तालाब बनाना तो दूर, पुराने तालाब भी उपेक्षा के कारण पुरते जा रहे हैं। समुद्र तल से लगभग 2,000 मीटर ऊंचे पहाड़ों के तालों में केवल दो ही हैं जो प्रदूषित नहीं हैं। कोडाइकेनाल और मुकरेती। बाकी के लिए खतरे की घंटी बज चुकी है। उत्तर प्रदेश के नैनीताल और भीमताल, कश्मीर की डलझील और बूलर, राजस्थान का पुष्कर, मणिपुर में लोकतक, सिक्किम में खिचीपिरी और तमिलनाडु में ऊटी—सब बस दिन गिन रहे हैं। बड़े शहरों के पास की हरेक झील इस सूची में आ गई है। जैसे अहमदाबाद की झील खरपतवार के पौधों से पट गई है। भोपाल का समुद्र सा विशाल ताल भी प्रदूषित हो चला है। हैदराबाद का हुसैनी सागर तो सिमटकर रह गया है।

भारत के अधिकांश शहरों में आधी आबादी गंदी बस्तियों में रहती है। इन जगहों में स्वच्छ जल की आपूर्ति न होने तथा स्वच्छता के अभाव में लोगों के स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ने की संभावना हर समय बनी रहती है। गंदा पानी पीने के कारण देश में प्रत्येक वर्ष लगभग 15 लाख बच्चे पांच वर्ष से कम उम्र में ही मर जाते हैं।

समस्या का तीसरा पहलू मौजूदा मानवीय व्यवस्था से जुड़ा हुआ है। हमारे पास जैसा भी जो भी जल उपलब्ध है और जल की जिस मात्रा का अभी हम उपयोग कर पा रहे हैं, उसकी वितरण व्यवस्था लूट पर आकर टिक गयी है। पानी का वितरण गांवों और शहरों के बीच इतना अधिक असमान और असंतुलित है कि एक सामान्य व्यक्ति वितरण की प्रशासकीय व्यवस्था पर से भरोसा खो बैठा है। इसलिए जिस किसान को नहर का पानी उपलब्ध है वह उसमें से ज्यादा से ज्यादा झपट लेना चाहता है और जिस शहरी को नल का पानी उपलब्ध है वह अपने कुत्ते को नहलाने के लिए भी सौ लीटर पानी खर्च करने से नहीं चूकता। यानि एक व्यक्ति पानी की अपनी जरूरत को पूरा करने की हवस में इस बात को पूरी तरह भुला देता है कि दूसरे की भी पानी संबंधी जरूरतें हो सकती हैं। एक शहर में उसकी जरूरत का तीन-चौथाई पानी आसानी से मिल जाता है। लेकिन उसी शहर के बगल में एक गांव को उसकी जरूरत का दसवां हिस्सा भी नहीं मिल पाता। इसके परिणामस्वरूप भी समूचे देश में पानी की लूट जैसी शुरू हो गयी है, जिसके कारण वितरण व्यवस्था में जो कुछ भी रहा बचा है, वह ध्वस्त होता जा रहा है।

इस तरह देश के सामने जो भयावह जल-संकट आ खड़ा हुआ है, उससे निपटने के लिए बहुस्तरीय प्रयासों की जरूरत है। वनों को कटाई रोकने से लेकर जल-स्रोतों में गंदगी का प्रवेश न होने देने तक के ठोस उपाय प्राथमिकता के साथ किये जाने चाहिए। यदि महज कानून बनाने से ही जल संकट पर काबू पाया जा सकता तो कभी का पाया जा सकता था। पानी में जहर घोलने को रोकने संबंधी अनेक कानून अभी भी देश में मौजूद हैं। उन्हें बनाते वक्त भी जल संकट पर विराम की काफी उम्मीदें बंधाई गई थीं, मगर वे कानून केवल किताबों में कैद होकर रह गए हैं। कानून बनाने से ज्यादा जरूरत आज पहले बनाए गए कानूनों पर प्रभावी अमल की है। साथ ही हमें लोगों के बीच जन-चेतना पैदा करने के लिए भी सार्थक प्रयास करने होंगे ताकि लोग बचे हुए जल-स्रोतों को गंदा न करने का संकल्प लें, फिर यह संकल्प चाहे किसी भी परंपरा की कीमत पर हो या किसी भी चिरसंस्कार की कीमत पर वरना बूंद बूंद पानी के लिए हम दम तोड़ने लगेंगे।

**स्मृति कुंज, मालाभवन**
**अल्मोड़ा (उ. प्र.) पिन - 263601**

# आज फिर याद आये

✍ वीरबहादुर 'मधु'

आज फिर याद आए,
खेत और खलिहान।

शहरों के भवन ऊंचे,
सारी सुविधाएं,
फिर भी बेचैन मन,
शांति नहीं पाए।

याद आए गांव का,
फूस का मकान।

कितना है कोलाहल,
भीड़ भरी सड़कें,
शहरों की जिन्दगी में,
नित दंगे भड़कें।

बार-बार याद आए,
खेत का मचान।

चिमनियों का धुआं देखा,
मन देखे काले,
शहरों की जिन्दगी में,
नित नए घोटाले।

याद आया भोला भाला
गांव का किसान।

**238, अम्बेडकर नगर**
**कंकर खेड़ा, मेरठ छावनी,**
**उत्तर प्रदेश**

# गरीबी उन्मूलन में बैंकों की भूमिका

डा. सवालिया बिहारी वर्मा

भारत की अर्थ व्यवस्था पूर्णतया कृषि पर निर्भर है। देश की जनसंख्या का 74 प्रतिशत गांवों में रहता है। ग्रामीण विशेष तौर से भूमिहीन मजदूर, छोटे और सीमांत कृषक, बंधुआ मजदूर, समाज के पिछड़े तबके के लोगों और अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लोगों की हालत अच्छी नहीं है। उनके पास उत्पादन के साधनों का अभाव, ज्ञान और तकनीकी जानकारी की कमी, पूर्ण रूप से भूमि पर निर्भरता, खेती बाड़ी के परंपरागत तरीके, रोजगार न होना और ज्यादा समय बेकारी में गुजारने इत्यादि कारणों से ये लोग निरंतर गरीबी के चंगुल में जकड़े हुए हैं।

यद्यपि कृषि व्यवसाय देश की जनसंख्या के दो-तिहाई कामगार मजदूरों को रोजगार प्रदान करता है फिर भी उनका जीवन-स्तर बहुत खराब है। प्रति व्यक्ति कम उत्पादन एवं कृषि उत्पादन का कम होना इसके प्रमुख कारण हैं। खेती के परंपरागत तरीकों से लगाव होने से भारतीय किसान अभी भी प्राथमिकता के क्षेत्र में ही बंधा रहना चाहता है, उद्योग और व्यवसाय के क्षेत्रों की ओर उसका झुकाव कम प्रतीत होता है।

बढ़ती हुई जनसंख्या का दबाव, सिंचाई के साधनों की कमी और ऊपर से अगर प्रकृति समय पर साथ न दे तो हालत और भी गंभीर हो जाती है। अच्छा कृषि वर्ष हमें अनाज उत्पादन में आत्मनिर्भर बना देता है। गांवों में रहने वाले सभी श्रेणी के व्यक्तियों और समुदायों की हालत काफी सुधर जाती है परंतु अकाल के एक वर्ष से अनाज की भारी कमी हो जाती है और आयात की व्यवस्था करने से विदेशी धन का बोझ बढ़ जाता है।

## नया दृष्टिकोण

देश की अर्थव्यवस्था एवं बढ़ती हुई जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए सरकार ने यह महसूस किया कि गांवों में लोगों की हालत सुधारनी होगी। गांवों में रहने वाले लोगों को रोजी-रोटी उपलब्ध करानी होगी। उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर भारत सरकार और भारतीय रिजर्व बैंक ने समय-समय पर निम्नलिखित उपाय गांवों के विकास हेतु अपनाये और उन्हें लागू किया है:

**जिलावार उपाय :** इस के अंतर्गत समस्त जिलों में 'लीड बैंक योजना' के तहत प्रमुख व्यावसायिक बैंकों का आबंटन किया गया और जिले के विकास हेतु 'जिला वार्षिक कार्य योजना' बनाने का कार्य लीड बैंक को सौंपा गया।

**बहु संस्थागत उपाय :** देश में एक से ज्यादा वित्तीय संस्थाओं की शुरूआत की गई ताकि समाज के प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति को ऋण की सुविधाएं उपलब्ध करवाई जा सकें। सरकार ने यह पाया कि एक ही संस्था द्वारा गांवों का विकास सम्पूर्ण रूप से और तेजी के साथ नहीं किया जा सकता है। इसलिए सहकारी बैंक व्यावसायिक बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की शुरूआत की गई।

**क्षेत्रगत उपाय :** गांवों में सम्पूर्ण विकास हेतु सरकार ने कई कार्यक्रम लागू किए ताकि क्षेत्र का विकास हो सके और उसका लाभ समस्त लोगों को मिल सके। इनमें सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण युवा रोजगार कार्यक्रम, प्रधान मंत्री रोजगार योजना और सुनिश्चित रोजगार योजना तथा जवाहर रोजगार योजना इत्यादि प्रमुख हैं।

कृषि और कृषि से संबंधित गतिविधियों, ग्रामीण उद्योग और व्यवसाय संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों की शुरूआत के साथ-साथ सरकार ने कुछ ऐसे कार्यक्रम शुरू किये जिससे कि लाभार्थी को सीधे ऋण की सुविधा और रोजगार प्राप्त हो सके। शिक्षित बेरोजगार युवकों हेतु रोजगार योजना, छोटे तथा सीमांत किसान हेतु सामुदायिक योजना, ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, प्रधान मंत्री रोजगार योजना एवं सुनिश्चित रोजगार योजना तथा जवाहर रोजगार योजना आदि कार्यक्रम इस श्रेणी में आते हैं।

प्रायोजित कार्यक्रमों के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु हमें यह जानना जरूरी है कि कौन-सी ऐसी सेवाएं हैं जिसे उपलब्ध करवाने से समाज के कमजोर वर्ग के व्यक्तियों को लाभ पहुंचाया जा सके। कृषि-प्रधान देश में कृषकों को सेवाएं प्रदान करना ग्रामीण विकास की ओर अग्रसर होना है।

कृषि-उत्पादन सेवाओं को उपलब्ध करवाने में बैंकों की भूमिका महत्वपूर्ण है। ऋण सुलभ करवाने के साथ-साथ ग्रामीण व्यक्तियों को माल खरीदने और बेचने के तकनीकी ज्ञान की जानकारी, समय पर आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति हेतु तथा सेवाएं उपलब्ध करवाने हेतु देश में कार्यरत विविध अभिकरणों तथा संस्थाओं का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। बैंकों को चाहिए कि वे विभिन्न संस्थाओं के साथ मिलकर ऐसी व्यवस्था करें जिससे कि प्रायोजित कार्यक्रमों से लाभान्वित व्यक्तियों द्वारा उत्पादित माल बिचौलियों तथा व्यापारी वर्ग के चंगुल से मुक्त किया जा सके। इस व्यवस्था से न सिर्फ लाभान्वित व्यक्ति का हित होगा वरन् उससे नई परियोजना की सफलता में संदेह भी नहीं रहेगा और साथ ही बैंक की ऋण व्यवस्था मजबूत बनेगी।

## विकास ऋण का उद्देश्य :

व्यावसायिक बैंकों की जिम्मेदारी सिर्फ परंपरागत सेवाएं ही प्रदान करने तक सीमित नहीं है बल्कि वे विकास के कार्यों में अभिकर्ता के रूप में कार्य करते हैं जिससे कि समाज के दुर्बल तथा कमजोर व्यक्तियों को ऋण की सुविधा के साथ-साथ रोजगार के नये अवसर उपलब्ध किये जा सकें।

सरकार द्वारा प्रायोजित कार्यक्रमों के उद्देश्यों की पूर्ति में बैंकों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बैंक के अधिकारियों तथा कर्मचारियों के दृष्टिकोण और विचारों में बदलाव लाना अत्यन्त जरूरी है जिससे कि विकास की गति को तेज करने में वे सहायक सिद्ध हो सकें तथा उद्देश्यों की पूर्ति हो सके। बैंकों को ऋण सुलभ करवाते समय निम्न उद्देश्यों को ध्यान में रखना चाहिए।

- प्रत्येक ऋण से उत्पादन में वृद्धि हो।
- प्रत्येक ऋण से नये रोजगार के अवसर-उपलब्ध हों।
- ऋण से आय में बढ़ोतरी हो।
- ऋण का भुगतान बढ़ी हुई आय से किया आए।

ऋण सुलभ करवाते समय अगर उपरोक्त बातों को ध्यान में रखा जाए तो देश में पनप रही बेकारी और गरीबी को किसी हद तक कम किया जा सकता है।

## बैंकों की भूमिका :

ऋण दोधारी तलवार है। यदि इसका उपयोग ठीक तरह से किया जाता है तो वह विकास और उत्पादन में मददगार सिद्ध हो सकता है और यदि इसका दुरुपयोग किया जाता है तो यह बोझ बन जाता है। ऋणी कर्ज के दलदल में फंस जाता है और वह और गरीब हो जाता है।

सरकार द्वारा प्रायोजित कार्यक्रमों को सुचारू रूप से चलाने में बैंकों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण ही नहीं बल्कि अति आवश्यक है ताकि समाज के दुर्बल और कमजोर वर्ग के व्यक्तियों को समय-समय पर ऋण की सुविधा के साथ उनके विचार और व्यवहार में भी परिवर्तन लाया जा सके। देश के सामाजिक और आर्थिक ढांचे में परिवर्तन लाने हेतु बैंकों को एकजुट होकर काम करना होगा और सरकार द्वारा चलाये गये विविध कार्यक्रमों के उद्देश्यों की पूर्ति में सक्रिय भाग लेना होगा।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय बैंकों के सम्मुख गंभीर चुनौतियां उठ खड़ी हुई हैं। अधिकांश बैंक घाटे में चल रहे हैं और विदेशी बैंक बहुत आकर्षक ब्याज और अन्य सुविधाएं देकर ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। फिर बैंकों के सामने कम्प्यूटर के आने से बड़े पैमाने पर बेरोजगारी और छटनी की तलवार लटक रही है। आज भारतीय बैंक एक ऐसे चौराहे पर खड़े हैं जहां उन्हें एक कठोर निर्णय लेना ही पड़ेगा कि आधुनिकता को अपनाया जाए, अपने कारोबार में पारदर्शिता लाकर ग्राहक का डिगता हुआ विश्वास अर्जित किया जाए ताकि विदेशी बैंकों से टक्कर ली जा सके अथवा पुराने रास्ते पर चलकर ही अपने अस्तित्व को ही समाप्त कर लें। अतः बैंकों को धैर्यपूर्वक दूरदर्शिता के साथ व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाकर अपने को आगे बढ़ाना होगा।

**सरस्वती शिशु मंदिर स्कूल से, उत्तर**
**मोहल्ला - शिवपुरी**
**मुजफ्फरपुर - 842001 (बिहार)**

# कैसे सफल हों ग्रामीण विकास परियोजनाएं

✍ माई चन्द

हमारे देश में लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है तथा आमतौर पर कृषि पर निर्भर करती है। इन खेतिहर ग्रामीणों के उत्थान हेतु सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) से लेकर अब तक अनेक विकास परियोजनाएं बड़े सुनियोजित ढंग से कार्यान्वित की है। सघन कृषि जिला कार्यक्रम (1960), सघन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम (1964), जनजातीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम (1970-71), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (1971), प्रशिक्षण तथा भ्रमण कार्यक्रम (1974), समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (1978-79), प्रयोगशाला से खेत तक कार्यक्रम (1979), परती भूमि विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम, वन लगाओ रोजी कमाओ, जवाहर रोजगार योजना आदि इनमें प्रमुख हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ऐसे प्रयासों से ही हमारे देश में खाद्यान्न में आत्म निर्भरता प्राप्त की जा सकी और कुछ सीमा तक रोजगार, शिक्षा तथा लोगों के जीवन स्तर में भी प्रगति हुई। परन्तु आमतौर पर देखा गया है कि ग्रामीणों के उत्थान हेतु चलाई गई बहुत सी परियोजनाओं का उतना प्रभाव नहीं हुआ जितना होना चाहिए था। ऐसा क्यों होता है ? यदि हम ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो इस असफलता के पीछे राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक कारणों को ही मुख्यतः पाते हैं। जहां तक राजनीतिक कारणों का प्रश्न है, आजकल हमारे देश में मूलरूप से राजनीति ही ग्रामीण विकास का आधार है तथा सारा विकास कार्य राष्ट्रीय और स्थानीय स्तर के राजनैतिक ढांचे के माध्यम से ही चलता है। यह ढांचा जितना सुदृढ़ होगा उतना ही हम विकास की ओर अग्रसर होंगें।

आर्थिक कारणों पर यदि नजर डालें तो हम पाते हैं कि किसी भी विकास परियोजना के आरम्भ होने से पूर्व उसके लिए पर्याप्त धनराशि की व्यवस्था की जाती है। परन्तु कार्य प्रारम्भ होने में विलम्ब अथवा विभिन्न गतिविधियों के लिए धन समय पर उपलब्ध न होने से विकास कार्य पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः किसी भी विकास परियोजना को सफल बनाने हेतु सभी संबंधित विभागों और अधिकारियों को यह ध्यान रखना चाहिए कि उपलब्ध धन और संसाधनों का प्रबंध समय से हो।

अब आता है प्रश्न सामाजिक कारणों का। किसी भी परियोजना को आयोजित करने में हम स्थानीय लोगों की परिस्थितियों, रीति-रिवाजों, रहन-सहन, खान-पान आदि की अनदेखी नहीं कर सकते। आजकल आमतौर पर देखने में आता है कि समुचित तरीके से सर्वेक्षक्षण किए बिना ही परियोजना को लोगों पर थोप देते हैं। ऐसा होने पर लोगों के विरोध का सामना करना पड़ता है, जिसका परियोजना पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः हमें चाहिए कि योजना बनाते समय सम्बन्धित लोगों की सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखें। इसके लिए आवश्यक है कि प्रत्येक निर्णायक स्तर पर स्थानीय लोगों अथवा उनके प्रतिनिधियों को सम्मिलित करें।

इसके अतिरिक्त भी कुछ अन्य महत्वपूर्ण बातें हैं जिन पर यदि थोड़ा सा ध्यान दिया जाए तो अवश्य ही हम किसी भी कार्यक्रम में सफलता प्राप्त कर सकते हैं ये सुझाव इस प्रकार हैं :

## 1. परियोजना बनाते समय लोगों की जरूरतों को ध्यान में रखना

विकास परियोजना बनाते समय परियोजना चलाए जाने वाले क्षेत्र का उचित तरीके से सर्वेक्षण करके लोगों की जरूरतों और उपलब्ध संसाधनों का पता लगाया जाना चाहिए तथा इनके अनुसार ही परियोजना तैयार करनी चाहिए। कई बार लोग अपनी जरूरतों को महसूस नहीं करते। ऐसी अवस्था में गोष्ठी, सामूहिक विचार-विमर्श, प्रशिक्षण शिविर इत्यादि आयोजित करके उन्हें उनकी आवश्यकताओं की जानकारी दी जा सकती है। ऐसा करने से लोग उस कार्यक्रम को अपना समझ कर उसे सफल बनाने में सहयोग देंगे।

## 2. कार्यक्रम में स्थानीय लोगों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करना

किसी भी विकास परियोजना को सफल बनाने हेतु यह जरूरी है कि उसमें स्थानीय लोगों की सक्रिय भागीदारी हो। अक्सर देखने में आता है कि अधिकांश लोग किसी कार्यक्रम को सरकारी समझ

कर उसम भाग नहीं लेते हैं। वे सोचते हैं कि यह सरकारी अधिकारियों का काम है, वे स्वयं इसे करेंगे, हम क्यों परेशान हों। परन्तु ऐसा नहीं होने देना चाहिए। सम्बन्धित अधिकारी भी यदि कार्यक्रम की सफलता चाहते हैं तो उन्हें स्थानीय लोगों की सक्रिय भागीदारी प्राप्त करने हेतु हर सम्भव प्रयत्न करना चाहिए।

## 3. विकास कार्यकर्ता और तकनीक में किसानों का विश्वास

प्रभावशाली तरीके से परियोजना को लागू करने तथा उसके माध्यम से तकनीक स्थानान्तरण में एक अन्य महत्वपूर्ण बात है कि लोगों का परियोजना से जुड़े विकास कार्यकर्ताओं और अपनाने हेतु बताई जाने वाली तकनीक में पूर्ण विश्वास हो। यदि इन दोनों में से किसी एक पर भी विश्वास न हो तो किसान सुझाई गई तकनीक को भी अपनाने में झिझकता है। इस स्थिति को सुधारने के लिए विकास कार्यकर्ता को चाहिए कि वे कभी भी झूठा वचन न दे। जो वचन दें तदनुसार किसानों से सम्मर्क कर उसे पूरा करने की कोशिश करें। कभी-कभी ऐसा होता है कि विकास कार्यकर्ता किसानों की किसी विशेष समस्या का समाधान तुरन्त सुझाने में असमर्थ होता है। कृषि एक विशाल क्षेत्र होने के नाते ऐसा होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कोई एक विकास कार्यकर्ता ऐसे विशाल क्षेत्र के सभी पहलुओं का विशेषज्ञ नहीं हो सकता। अतः उन्हें किसानों को यह कहने में लज्जा महसूस नहीं करनी चाहिए कि मैं उक्त समस्या का समाधान किसी सम्बन्धित विशेषज्ञ के साथ विचार करने के पश्चात ही बताऊंगा। ऐसा करने से उनके प्रति लोगों का विश्वास घटने की अपेक्षा बढ़ेगा, जो किसी कार्यक्रम की सफलता के लिए अति आवश्यक है।

## 4. सरकारी अनुदान का उचित उपयोग

सभी जानते हैं कि सरकारी बजट का एक बड़ा अंश ग्रामीण विकास कार्यों पर खर्च किया जाता है। इसके बावजूद हमें बहुत कम उपलब्धि दिखाई पड़ती है। इसके लिए जिम्मेदार प्रमुख कारणों में से एक है—लोगों का विकास कार्य में रुचि न लेना तथा प्राप्त सरकारी अनुदान को अपने ही किसी व्यक्तिगत कार्य में लगाना। यदि हम थोड़ा सा ध्यान दें, इस प्रकार प्राप्त हुए धन से व्यर्थ में ही आराम परस्त वस्तुएं खरीद कर रखने से क्या उत्थान हो जाता है ? हम पायेंगे कि बिल्कुल नहीं। ऐसा करने से कुछ समय के लिए तो आराम अवश्य मिल सकता है परन्तु अधिक देर नहीं। ऐसी परिस्थितियों के बाद में और भी अधिक परेशानियों को सामना करना पड़ सकता है। अतः हमारे ग्रामीणों को चाहिए कि वे विकास कार्यों हेतु प्राप्त सरकारी अनुदान का उचित उपयोग करके निरन्तर कुछ न कुछ आय प्रदान करने वाले रोजगार के साधन जुटाएं। विकास कार्यकर्ता भी समय-समय पर लोगों से सम्पर्क करके उन्हें सरकारी अनुदान के उचित उपयोग के लिए प्रोत्साहित करते रहें।

## 5. लोगों को सही दिशा निर्देश

सही दिशा निर्देश से यहां अभिप्राय है कि किसानों को उनके संसाधनों और परिस्थितियों के अनुकूल ही उचित तकनीक की जानकारी दी जानी चाहिए। ऐसा करने से किसानों का विकास कार्यकर्ताओं में विश्वास भी बढ़ता है। वैसे हमारे देश का किसान बहुत ही अनुभवी और उत्तरदायी है। यदि विकास कार्यों के लिए उसे सही दिशा निर्देश मिले तो वह और अधिक प्रगति की ओर बढ़ सकता है।

## 6. विकास कार्यकर्ताओं द्वारा यथोचित कर्तव्य पालन

कभी कभी देखने में आता है कि किसी कारणवश विकास कार्यकर्ता किसानों को तकनीक स्थानान्तरण में अपना कर्तव्य ठीक तरह से नहीं निभा पाते, विशेष रूप से नई तकनीक का खेतों पर प्रदर्शन आयोजित करने के समय वे किसान की रुचि, स्थान के चुनाव, उपलब्ध आवश्यक संसाधनों आदि की अनेदखी करके उनको कृषि निवेश प्रदान कर देते हैं तथा कह देते हैं कि आपको इन्हें उपयोग में लाना है। उस प्रदर्शन क्षेत्र का बाद में ठीक प्रकार से निरीक्षण भी नहीं करते। इसका प्रभाव यह होता है कि हमारे संसाधन तो व्यर्थ जाते ही है, साथ ही किसानों के मन पर नई तकनीक का विपरीत प्रभाव पड़ता है। उचित तरीके से न किए गए प्रदर्शन से स्वाभाविक तौर पर पैदावार पारम्परिक तकनीक की अपेक्षा कम मिलती है। इससे भविष्य में किसान उस तकनीक और विकास कार्यकर्ता पर विश्वास नहीं करते। ऐसी अवस्था में तकनीक उत्पादन और विकास कार्यों पर किया गया खर्च व्यर्थ जाता है।

## 7. असामाजिक तत्वों से सावधान

प्रत्येक समाज में कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनको विकास से कुछ लेना देना नहीं होता। वे न तो स्वयं विकास कार्यों में भाग

लेते हैं और न अन्य लोगों को ही भाग लेने देना चाहते हैं। ऐसे व्यक्तियों को हमेशा कुछ ऐसा सूझता रहता है, जिससे विकास कार्यक्रमों में बाधा डाली जा सके। वास्तव में, इस तरह के लोग समाज और देश के शत्रु होते हैं। अतः विकास परियोजना आयोजक और कार्यकर्ता कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु इन असामाजिक तत्वों से सदा सतर्क रहें। यह भी प्रयत्न करना चाहिए कि किसी प्रकार से ये असामाजिक तत्व भी कार्यक्रम में सक्रिय रूप से रुचि ले सकें।

यदि विकास कार्यकर्ता सम्बन्धित अधिकारी और किसान उपरोक्त सुझावों को ध्यान में रखकर कार्य करें तो न केवल हमारी ग्रामीण विकास परियोजनाएं सफल होंगी बल्कि ग्रामीणों और देश की प्रगति को एक नई दिशा मिलेगी।

**क्षेत्रीय औद्योगिक अनुसंधध केन्द्र,**
**डा० यशवंतराव परमार**
**औद्योगिकी और वानिकी विश्वविद्यालय,**
**शारबो, किन्नौर (हिमालच प्रदेश)**

---

**पृष्ठ 2 का शेष**

'कुरुक्षेत्र' का फरवरी 94 का अंक पढ़ने का अवसर मिला। देश के विकास के लिए विकास के सभी पहलुओं तथा स्वरूपों पर इस अंक में विस्तार से चर्चा की गई है। ग्रामीण विकास राष्ट्रीय विकास की पूर्व शर्त है और ग्रामीण विकास में प्रत्याशित बाधाओं पर इस अंक में विस्तृत विचार हुआ है।

गरीबी तथा इसकी संतति विकास में बाधक होती हैं। ये उन समस्याओं को जन्म देती है जिन पर राष्ट्रीय प्रयास भी कमजोर साबित हो रहे हैं। जनसंख्या पर नियंत्रण, निरक्षरता उन्मूलन, जन सहभागिता व अन्य समस्याओं पर नियंत्रण के लिए मानसिक क्रांति आवश्यक है। भूमि सुधार कार्यक्रमों को समुचित रूप में क्रियान्वित कर, आर्थिक संसाधनों का संगत वितरण तथा परंपरागत ग्रामीण कौशल में परिष्करण लाकर मानवीय संसाधन का भरपूर लाभ उठाया जा सकता है। ग्रामीण विकास के लिए समन्वित और सामयिक व स्थानिक आवश्यकताओं के अनुकूल प्रयास किए जाएं तभी समस्त ग्रामीण विकास का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

**हिम्मत सिंह**
**522, बरकतनगर,**
**टोंक फाटक, जयपुर**
**(राजस्थान)**

---

**पृष्ठ 8 का शेष**

उनका उपयोग करना अब इन वर्गों पर ही निर्भर है। केवल संवैधानिक अधिकार पा लेना ही अपने आप में कोई साध्य नहीं है। जिन अधिकारों का उपयोग अब तक सांसद और विधायक करते आए हैं, और सरकारी अधिकारी तथा कर्मचारी जिनमें अपनी हिस्सेदारी निभाते आए हैं, उनका उपयोग अब इन पंचायतों को सौंपने में संकोच व संशय स्वाभाविक होंगे। लेकिन उत्साह और अपने गांव क्षेत्र के विकास की लगन से ग्राम पंचायतें और पंच-सरपंच यह सिद्ध कर सकेंगे कि लोकतंत्र की जड़ों को सींचने में वे किसी से कम नहीं हैं। निस्संदेह राज्य सरकारों और राजनीतिक दलों का भी अपने कार्यकर्ताओं को स्वशासन के लिए प्रशिक्षित करने में सहयोग वांछनीय होगा।

**बी-7, प्रेस एन्क्लेव,**
**साकेत, नई दिल्ली - 110017**

# बाढ़ और सूखे की विनाशलीला

✍ राजीव रंजन वर्मा

भारत जैसे विशाल देश में विविधताओं में एकरूपता और अनेकता में एकता विराजमान है। यहां अनेक जातियां, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा, वेशभूषा, रीति-रिवाज के लोग रहते हैं। देश की सीमाएं दूर-दूर तक फैली हैं। यहां एक ही समय में अलग-अलग मौसम होते हैं। इनके प्रभाव भी अलग-अलग होते हैं, जैसे एक ही समय में एक जगह बाढ़ आती है, तो दूसरी जगह सूखा पड़ता है। इसलिए इतने बड़े देश में अनेक समस्याएं विद्यमान हैं।

धरती पर जल की समस्या बहुत पुरानी है। पानी के बिना मनुष्य का जीना नामुमकिन है। वर्षा कृषि का जीवन है। अच्छी वर्षा से किसान को अच्छी खेती के सपने साकार नजर आने लगते हैं। किंतु कभी अति वृष्टि और उससे उत्पन्न बाढ़ की विनाशलीला में सारे सपने भी घुल जाते हैं।

कहीं अतिवृष्टि और कहीं अनावृष्टि से ऐसा लगने लगता है कि मनुष्य प्रकृति के हाथ का खिलौना है। भारत में प्रति वर्ष कई क्षेत्र बाढ़ के प्रकोप में और कई क्षेत्र सूखाड़ के चपेट में रहते हैं। आज स्वतंत्रता प्राप्ति के 47 वर्ष बीत जाने के बावजूद भी इस समस्या का हल नहीं निकल पाया है। विगत कुछ वर्षों से कहीं बाढ़ और कहीं सूखाड़ में बढ़ोतरी ही हुई है। नदियों का तल ऊपर उठने और अति वर्षा के कारण बरसात में पूर्वी भारत बाढ़ की चपेट में डूबा नजर आता है जबकि गुजरात और महाराष्ट्र से लेकर हरियाणा तक का क्षेत्र बराबर सूखा झेलता है। उत्तर बिहार में प्रतिवर्ष बाढ़ आती है तो दूसरी ओर दक्षिण बिहार को हर वर्ष सूखाड़ का सामना करना पड़ता है। गुजरात, महाराष्ट्र, हरियाणा और दक्षिण बिहार के किसान वर्षा की इंतजार में रहते हैं। चारे के बिना गुजरात और महाराष्ट्र के पशुधन का काफिला वहां से भाग खड़ा होता है।

बाढ़ की विनाशलीला समाप्त करने के लिए अनेक बांधों, तटबंधों और परियोजनाओं का निर्माण हो चुका है और हो भी रहा है, किंतु बाढ़ का प्रकोप पूर्वी भारत को अभी भी झेलना पड़ रहा है। इनमें से कई बांध और तटबंध तो हर साल बनते हैं, किंतु सर्पीली नदियां इन्हें टिकने नहीं देती हैं और शीघ्र ही इन्हें ढाह देती हैं।

उत्तर भारत की अधिकतर नदियों में पानी पर्याप्त मात्रा में रहता है, फलतः वर्षा के दिनों में पानी काफी बढ़ जाने के कारण बाढ़ की स्थिति पैदा हो जाती है। बाढ़ के दिनों में इन नदियों का पानी उफन पड़ता है। इन नदियों को पानी हिमालय से मिलता है। बर्फ के तेज पिघलाव के कारण तथा वर्षा के पानी से मिलकर बाढ़ आती है। अतिवृष्टि इसे और भी भयावह बना देती है। यदि इन नदियों को दक्षिण भारत की नदियों से जोड़ दिया जाए तो उत्तर भारत की नदियों का तेज बहाव कम हो जाएगा, वहीं दूसरी ओर दक्षिण भारत की नदियों को पर्याप्त पानी मिल जाएगा और सम्पूर्ण भारत में बढ़ती हुई बाढ़ और सूखे की गंभीर समस्याएं दूर हो सकेंगी। उत्तर भारत और दक्षिण भारत की नदियों से निकली नहरें सिंचाई के लिए काफी उपयुक्त तो होंगी ही, साथ ही नदियों के अत्यधिक वेग को कम कर देंगी।

बाढ़ जो देश की एक गंभीर समस्या है इसका कारण नदियों द्वारा काटी गयी मिट्टी का नदियों के तल में जमाव होना है। इससे नदी का तल ऊपर उठ जाता है और बाढ़ आती है। सरकार द्वारा इस समस्या के समाधान के लिए एक लंबी अवधि की योजना तैयार कर नदियों के तल की मिट्टी को निकालकर नदियों की गहराई को बनाए रखना बाढ़ नियंत्रण के लिए आवश्यक कदम होगा। नदियों को नियंत्रित और सही दिशा में बहाव की आवश्यकता है। जब नदियां टेढ़े-मेढ़े रास्ते में होकर गुजरती हैं और जलस्तर काफी बढ़ जाता है, तो कुछ क्षेत्रों को अपनी चपेट में ले लेती हैं और उस क्षेत्र-विशेष की स्थिति भयावह हो जाती है। बिहार की कोसी नदी ऐसी ही है, जो प्रति वर्ष अपनी राह बदलती है और जान माल को भयानक क्षति पहुंचाती है।

वृक्षों की अन्धाधुंध कटाई से प्रदूषण की विकराल समस्या तथा बाढ़ और सूखे की स्थिति पैदा होती जा रही है। मानवजाति का जीवन प्रकृति पर आधारित है। वन सम्पदा के ह्रास से कुछ स्थानों में बाढ़ की और कुछ स्थानों में सूखे की समस्या में काफी वृद्धि हुई है। नदियों के उद्‌गम स्थलों पर्वतों/पठारों से वृक्षों के कटाव के कारण वहां की धरती और मिट्टी के कटकर बहने से नदियों के मुहाने भरते जा रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप बाढ़ पहले की तुलना में अधिक विनाशलीला प्रस्तुत करने लगी है।

सूर्य की ऊष्मा से, वनों के सहयोग से भूमि की आद्रता और जलाशयों, नदियों, तालाबों, समुद्रों का जल बादल बनकर वर्षा के रूप में बरसता है तथा वन सम्पदा और कृषि जगत का पोषण करता है। भूमि, जल, वायु और ध्वनि प्रदूषण को रोकने में वन-सम्पदा की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

वन धरती को चिलचिलाती धूप, भारी वर्षा, सूखे और हवा से संरक्षण प्रदान करते हैं। मिट्टी की गहरी परतों से खनिज और पोषक तत्वों को ऊपर लाते हैं। पानी को रोकते हैं तथा बादलों को खींचकर वर्षा कराते हैं। भूमि की उर्वरा शक्ति को कायम रखने के लिए वनों का रहना आवश्यक है। पेड़ो के कटने से उपजाऊ मिट्टी की ऊपरी परत ढीली होकर बह जाती है। धरती की उर्वरा शक्ति कम होती जा रही है। वर्षा का चक्र गड़बड़ा रहा है। हरे-भरे खेत और क्षेत्र बंजर रेगिस्तान में बदल रहे हैं।

बाढ़ और सूखाड़ से मुक्ति भारत के सतत विकास की गति बनाने के लिए भी आवश्यक है। देश की आय का बहुत बड़ा भाग प्रति वर्ष राहत कार्यों में निकल जाता है जिसका उपयोग बाढ़ और सूखा पर नियंत्रण रखने के प्रयासों पर किया जा सकता है। पं. नेहरू के काल में सिंचाई इंजीनियरी के एक सुप्रसिद्ध भारतीय इंजीनियर ने उत्तर तथा दक्षिण भारत की नदियों को जोड़कर सारे देश में नहरों का जाल बिछाकर इस भयंकर त्रासदी को मिटाकर देश में शाश्वत खुशहाली लाने का स्वप्न देखा था। यह त्रिमुखी योजना थी नदियों को बांधने की जगह जल निकासी के वेग को नहरों द्वारा खींचकर कम कर देना, ऊंची जगह से नीचे उतरती नदियों पर बांध बांधकर पन बिजली पैदा करना तथा जलाशयों का निर्माण तथा जल की कमी वाली नदियों को सदाबहार बनाए रखना इस योजना के प्रमुख उद्देश्य थे। यह एक खर्चीली योजना थी। राष्ट्रीय आय को ध्यान में रखकर बाढ़ और सुखाड़ पर काबू पाने का प्रस्ताव था। इस योजना को क्रमबद्ध रूप से कुछ निश्चित समय और कुछ प्रतिशत राहत कार्यों के नाम पर लगाकर इसे कार्यरूप दिया जा सकता था। यह योजना कार्यान्वित नहीं हो सकी। इस योजना का पुनरावलोकन करके इसे कार्यरूप दिया जाना देश और देशवासियों के लिए आवश्यक कदम होगा।

बाढ़ और सूखे जैसी विपत्ति पर नियंत्रण रखने के लिए विभिन्न नदी घाटी योजनाओं को कार्यरूप दिया गया है, जिसका मुख्य उद्देश्य निम्न है :-

- बाढ़ नियंत्रण
- सिंचाई की समुचित व्यवस्था
- मत्स्य उद्योग को बढ़ावा दिया जाना
- पर्यटन

ये सारे प्रयास निष्ठा, प्रतिबद्धता और ईमानदारी से किए जाने पर ही लाभप्रद हो सकते हैं। वनों की रक्षा और विस्तार कर बाढ़ और सूखे की दुर्दशा से हम छुटकारा पा सकते हैं। साथ ही उत्तर भारत और दक्षिण भारत की नदियों को जोड़कर सारे देश में नहरों का जाल बिछाकर, बाढ़ और सूखे जैसी भयंकर त्रासदी से छुटकारा पाया जा सकता है। इसके अलावा नदी तल से मिट्टी निकालकर नदियों की गहराई को बनाए रखकर बाढ़ों पर नियंत्रण प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की जा सकती है।

**बिहार ग्रामीण विकास संस्थान,**
**हेहल, रांची - 834005**

---

**पृष्ठ 11 का शेष**

इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज ने 1991 में केरल की जिला परिषदों के सदस्यों की सामाजिक पृष्ठभूमि के बारे में पड़ताल की। परिषदों में केवल 30 प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए सुरक्षित थे, लेकिन निर्वाचित स्त्री प्रतिनिधियों का प्रतिशत इससे कहीं ज्यादा था। यानी वे गैर आरक्षित क्षेत्रों से पुरुषों को हराकर भी परिषद में आयीं।

पंचायती राज निकायों में महिलाओं के आरक्षण से प्रशासन में लोकशक्ति की साझेदारी अपने आप नहीं हो जाएगी। ताकतवर वर्ग, जातियां और लोग, जिनका समाज, राजनीति अर्थव्यवस्था में दबदबा है, खींचतान करेंगे, रोड़े अटकाएंगे और नई व्यवस्था को प्रभावित करने का प्रयास करेंगे। इन सब का सामना करना होगा – सबसे अधिक उन लोगों को जिनको प्रतिनिधित्व मिलेगा। उनके हितैषियों को, चाहे वे राजनीति में हों, अखबारों में हों या किसी अन्य क्षेत्र में हों, मुखर समर्थन देना होगा।

**बी-9 प्रेस इनक्लेव, साकेत,**
**नई दिल्ली-110017**

# भारतीय मरुस्थल का कल्पतरु : खेजड़ी

✍ फारूक आफरीदी

विश्व में ऊर्जा संकट, ईंधन की कमी, पर्यावरण प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों में तेजी से हो रहे विनाश ने विकासशील देशों को सघन वृक्षारोपण और वानिकी का महत्व समझने के लिये विवश कर दिया है। इसके साथ ही भू-संरक्षण की आवश्यकता भी तेजी से महसूस की जाने लगी है। नैरोबी में 1977 में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में विश्व-भर के वैज्ञानिकों ने ऊर्जा के वैकल्पिक साधनों के विकास के साथ-साथ मरुस्थल के पांव तोड़ने का संकल्प भी दोहराया है।

हाल के वर्षों में वैज्ञानिकों का ध्यान भारत के उत्तर-पश्चिमी मरुस्थल में प्राकृतिक रूप से पनपने वाले वृक्ष 'प्रोसोपिस सिनटेरिया' की ओर गया। इसे स्थानीय भाषा में लोग 'खेजड़ी' के नाम से जानते हैं। मरुस्थल सदियों से प्यासा रहा हैं। वर्षा यहां वरदान सिद्ध होती है किंतु प्रतिकूल परिस्थितियों में भी खेजड़ी के वृक्षों की कतारें दूर-दूर तक देखी जा सकती हैं। खेजड़ी ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नया आधार प्रदान किया है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परषिद द्वारा संचालित केन्द्रीय मरु अनुसंधान संस्थान, जोधपुर के वैज्ञानिकों ने खेजड़ी के महत्व को समझकर 1956 में ही इसके विभिन्न पक्षों पर अनुसंधान का कार्य एक चुनौती के रूप में प्रारंभ किया। अब तक खेजड़ी के संवर्द्धन, पुनःउत्पादन, सिल्वी कल्चर, चारा उत्पादन, भू-भौतिकी अनुकूलन, लवण, पौष्टिकता, सामाजिक-आर्थिक महत्व, कृषि वानिकी महत्व आदि विषयों पर शोध कार्य किया गया। शोध का यह कार्य अभी अनवरत रूप से जारी है।

पश्चिमी राजस्थान, जहां औसतन 200 से 500 मिलीमीटर वर्षा होती है, खेजड़ी के वृक्षों की बहार देखी जा सकती है। यही नहीं 400 किलोमीटर वर्षा वाले क्षेत्रों में भी खेजड़ी के पेड़ बड़ी संख्या में मिलते हैं। राजस्थान, हरियाणा, गुजरात और उत्तर प्रदेश के विभिन्न हिस्सों में खेजड़ी के वृक्ष बहुतायत में हैं।

गर्मी के मौसम में इनमें फल-फूलों की बहार आती है। उस समय मरुस्थल के अन्य वृक्ष फूल पत्तियों के झड़ जाने से नंगे हो जाते हैं। सामान्यतया खेजड़ी का वृक्ष दस वर्ष में फल-फूल उपलब्ध कराने लगता है तथा आगामी 200 वर्षों तक यह मरुस्थल के लिये सहारा सिद्ध होता है।

## धर्म ग्रंथों में खेजड़ी

भारतीय हिन्दू धर्म ग्रंथों में भी खेजड़ी का उल्लेख मिलता है। इसका संस्कृत नाम 'शपी' है। यूरोपीय संस्कृत शोधकर्ताओं मोनियर और विलयम्स ने खेजड़ी का मिमोता शुमा और अकेसिया शुमा नाम से उल्लेख किया है। 'मनुस्मृति' और 'रघुवंश' में खेजड़ी की लकड़ी को अग्नि कार्यों में उपयोग लाने का उल्लेख है। वैदिक काल में खेजड़ी की लकड़ी यज्ञ में काम आती रही है। ऋग्वेद में तो यहां तक कहा गया है कि गाय के लिये यदि किसी को अभिभावक माना जाए तो पहला स्थान धरती तथा दूसरा शमी अर्थात् खेजड़ी का, जिसकी छाया में वह आराम के क्षण व्यतीत करती है।

अथर्ववेद के खंड 612/11 के प्रथम पद में यह उल्लेख भी आया है -

**शमीमश्वत्थ आयद्स्तत्र पुसवनं कृतम्।**
**तद् वै पुत्रस्य वेदन तत् स्त्रीष्वामरामति।।**

अर्थात् खेजड़ी और पीपल की आराधना से बांझ स्त्री भी गर्भवती होकर पुत्र रत्न को प्राप्त करती है।

खेजड़ी का उल्लेख रामायण और महाभारत में भी मिलता है। एक बार अर्जुन ने पांडवों के साथ जंगल में खेजड़ी के खोखले भाग में छुपकर शरण ली थी। वाल्मीकि रामायण के अनुसार पंचवटी में भी खेजड़ी के वृक्ष थे और लक्ष्मण ने उसकी शाखाओं से पर्णकुटी का निर्माण किया था।

पश्चिमी राजस्थान के 58 प्रतिशत क्षेत्र में रेतीले टीबे ही टीबे हैं। इन टीबों के स्थिरीकरण में विभिन्न प्रजातियों के पेड़ों की महत्वपूर्ण भूमिका है। कुछ रेतीले टीबे धार्मिक मान्यताओं के कारण संरक्षित हैं तथा वहां खुले जंगलों में लगभग 5 से 15 प्रतिशत क्षेत्र में खेजड़ी के वृक्ष उगे हुए हैं।

मरुस्थलीय क्षेत्रों में अत्यधिक फसल लेने, मवेशियों की चराई तथा वृक्षों की अंधाधुंध कटाई से भूमि का विनाश हुआ है। इसके बावजूद सूखा और अन्य प्राकृतिक विपदाओं में भी खेजड़ी ने अपनी जड़ें नहीं छोड़ी हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि एक बार खेजड़ी का वृक्ष पनप गया तो फिर उसके विनाश की संभावना क्षीण ही रहती है। यही कारण है कि "खेजड़ी से खेजड़ी पनपे" कहावत मरुस्थल में चरितार्थ हुई है। रेत के टीबों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक उड़ने में खेजड़ी के वृक्षों ने बाधा उत्पन्न कर रेगिस्तान के फैलाव को रोकने में जो भूमिका निभायी है उसे किसी भी अवस्था में कम नहीं आंका जा सकता। टीबा स्थिरीकरण में खेजड़ी ने महत्वपूर्ण योगदान किया है।

खेजड़ी को राजस्थान में खेजड़ा, खेजड़ी, दिल्ली में जांटी, चोंकसा, पंजाब और हरियाणा में झिंड, झांड, झंड; कर्नाटक में बन्नी, पेरूम्बाई, गुजरात में शमी शुमरी, सिन्ध में कांडी, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में शामी, तमिलनाडु में जम्बू, पेरूम्बाई और आंध्र प्रदेश में जमी चेठू के नाम से पुकारा जाता है।

अफगानिस्तान, ईरान, पाकिस्तान (बलूच और सिंध क्षेत्र) में भी खेजड़ी के वृक्ष मिलते हैं। भारत में पश्चिमी राजस्थान के पाली, सिरोही, जालोर, बाड़मेर, जैसलमेर, बीकानेर, जोधपुर, नागौर, चुरू और गंगानगर जिलों में खेजड़ी के वृक्ष बहुतायत में हैं।

खेजड़ी का पौधा फरवरी-मार्च में फूलों से आच्छादित होता है तथा अप्रैल-मई तक फल देने लगता हैं। राजस्थान में ग्रामीण इसकी हरी फलियां झाड़ लेते हैं तथा उन्हें सुखाकर अपने निजी उपयोग में लेते अथवा बाजार में बेचकर भरण-पोषण करते हैं। बाजार में सामान्यतः इसकी फलियों के साथ अन्य पेड़ों की प्रजातियों की फली मिलाकर बेचते हैं, जिसे स्थानीय भाषा में 'प्रचकुदा' कहते हैं। हरी फलियों को प्रदेश के लोग 'सांगरी' या 'हांगरी' कहते हैं। इसकी पत्तियों को स्थानीय लोग 'लूंग' कहते हैं। लूंग दुधारू पशुओं के लिये एक पौष्टिक आहार है। हरी लूंग बाजार में काफी अच्छी कीमत पर बिक जाती है। पशुपालक अपने पशुओं के लिये इसे खरीदते हैं। एक वृक्ष औसतन 25-30 किलोग्राम तक सूखी पत्तियों का चारा उपलब्ध कराता है।

काजरी के द्वारा किये गये सर्वेक्षण और अनुसंधान के आधार पर खेजड़ी से प्राप्त लूंग के 15.4 प्रतिशत प्रोटीन, 20.3 प्रतिशत रेशा, 0.93 प्रतिशत फास्फोरस, 2.65 प्रतिशत केल्मिशयम तथा 0.5 प्रतिशत मेग्नीशियम की मात्रा उपलब्ध होती है।

मरुस्थलीय क्षेत्रों में निवास करने वाले कुछ समुदाय खेजड़ी जैसे वृक्षों को काटना न केवल अपराध मानते हैं अपितु इसकी रक्षा के लिये सदैव तैयार रहते हैं। राजस्थान की विश्नोई जाति के लोग तो खेजड़ी काटने वाले व्यक्ति की जान तक लेने को उतारू हो जाते हैं। राजस्थान में बोगाजी की सर्प देवता के रूप में आराधना होती हैं। गांवों में बारातें इसी वृक्ष के नीचे ठहरती हैं तो गर्मियों में राहगीरों की सेवार्थ पानी की प्याऊ भी वहीं लगती हैं। मरुस्थल में भीषण गर्मी के दौरान लू के ऐसे थपेड़े पड़ते हैं कि मवेशी हो या आदमी सभी खेजड़ी की छाया में शरण लेते हैं।

रेगिस्तान के वृक्षों में खेजड़ी ही ऐसा वृक्ष है, जिसे वृक्षों का राजा कहा जाता है। इसका कारण यह है कि इसकी लकड़ी, पत्तियां, पुष्पदल, टहनी, फल, तना, शाखाएं, जड़, गोंद आदि सभी का ग्रामीण क्षेत्रों में कहीं न कहीं अवश्य उपयोग होता है। खेजड़ी की भूरे रंग की फलियां इतनी मीठी होती हैं कि बच्चे बड़े चाव से खाते हैं। मिठास के कारण इन फलियों को "मारवाड़ी मेवा" कहा गया हैं। इन फलियों को स्थानीय नाम "खोखा" है। दुधारू पशुओं के लिये भी यह फलियां बड़ी उपयोगी हैं। खेजड़ी के एक वृक्ष से औसतन पांच किलो फलियां प्राप्त होती हैं।

खेजड़ी के पुष्पों का महत्व भी कम नहीं है। इसके पुष्प जहां रक्त शोधन में सहायक हैं वहीं ग्रामीणों द्वारा ठंडक के लिये भी पानी और शक्कर में मिला कर उपयोग किये जाते हैं। इस तरह इसके फूल न केवल टानिक का काम करते हैं अपितु रोगों को दूर करने में भी सहायक है। गर्भ स्राव से पीड़ित महिलाओं के उपचार के लिये खेजड़ी के फूलों को चीनी में मिलाकर लिया जाता है।

खेजड़ी की छाल भी बड़ी स्वादिष्ट होती हैं जिसे राजस्थानी में 'छोड़ा' कहते हैं। सन् 1968-69 में भीषण दुर्भिक्ष के समय लोगों ने खेजड़ी की छाल खाकर अपने जीवन की रक्षा की थी। इसकी छाल पीसकर पाउडर भी बनाया जाता है, जिसका उपयोग गर्मियों में एक स्थानीय औषधि के रूप में किया जाता है। कोढ़ के रोग, दस्त, श्वास रोग, दमा, चर्म रोग, मस्सा तथा मानसिक अस्थिरता आदि रोगों की चिकित्सा के लिये खेजड़ी की छाल से औषधियां और टानिक तैयार किये जाते हैं।

खेजड़ी की जड़ें इतनी मजबूत और गहरी होती हैं कि बाढ़ के दौरान लोग खेजड़ी पर चढ़कर अपनी रक्षा करते हैं। राजस्थान

**(शेष पृष्ठ 41 पर)**

# शोर के विरुद्ध आवाज उठाइये

अंकुश्री

तेज आवाज में रेडियो या दूरदर्शन के कार्यक्रमों को सुनने-देखने से शोर उत्पन्न होता है। ऐसे कार्यक्रमों के दौरान या उसके बाद श्रोताओं-दर्शकों को थकान-सी महसूस होने लगती है। किंतु यह अनुभूति इतनी सूक्ष्म होती है कि इस ओर आम तौर पर ध्यान नहीं जा पाता।

बीसवीं शताब्दी को वैज्ञानिकों ने "शोर की शताब्दी" भी कहा है। यह सही है कि इस शताब्दी में मनुष्य ने सर्वाधिक वैज्ञानिक उपलब्धियां हासिल की हैं। लेकिन इसके कुछ कुप्रभाव भी हैं, जिन्हें अब स्वीकार कर लिया गया है। इनमें ध्वनि प्रदूषण भी एक है।

ध्वनि प्रदूषण से मनुष्य बहरा तक हो जाता है। यह एक ऐसा रोग है जिसकी जानकारी होने तक पानी सिर से गुजर चुका होता है।

कल-कारखानों की घरघराहट, सड़क पर चलने वाले मोटर वाहनों, वायुयानों, रेलों, दूरदर्शन, रेडियो, लाउड-स्पीकरों, आधुनिक संगीत आदि से लगातार ध्वनि प्रदूषण फैल रहा है। इन ध्वनि प्रदूषणों से जो लोग सीधे जुड़े हुए हैं वे अधिक प्रभावित होते हैं।

ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव कल-कारखानों के कर्मचारियों, विभिन्न वाहनों के चालकों, यातायात पुलिस, अधिक वाहन चलने वाली सड़कों के किनारे रहने वाले लोगों, दुकानदारों, सड़क वाहन या रेल से अधिक यात्रा करने वाले लोगों और संगीत की तेज धुन के बीच काम करने या रहने वाले लोगों पर अधिक पड़ता है।

अप्रिय या अनचाही किसी भी ध्वनि को शोर कह दिया जाता है। मगर श्रवण-विज्ञान में शोर का मतलब ऐसी ध्वनि से है जो श्रवण शक्ति पर विपरीत असर डाल सकती हो।

## कितना शोर सह्य है

शोर कई तरह के होते हैं और उनका उतार-चढ़ाव भी कई तरह का होता है। जैसे रेडियो, टी. वी. या वीडियो पर बज रहे गाने अथवा मशीन की आवाज में एक लय होता है। लेकिन हथौड़े से यकायक प्रहार कर देने या पटाखा छूटने से उठी आवाज में कोई लय नहीं होती। यह पूर्ण रूप से यकायक उठा शोर है, जिसकी क्षमता कम भी हो सकती है, लेकिन जो अशांत करने में अधिक कारगर होता है।

85 से 90 डेसीबल शोर की मात्रा सह्य है। शोर कितने डेसीबल का है, इसे मापने के लिये एक यंत्र बना है, जिसे आडियोजीमीटर कहते हैं। इस यंत्र द्वारा हवा में ध्वनि के दबाव को माप कर व्यक्ति द्वारा झेल रहे शोर की मात्रा का अंदाज लगाया जा सकता है।

न्यूयार्क के एक कार्यालय में एक कर्मचारी शोर से इतना अधिक परेशान हो गया कि शौचालय में आकर अपना सिर पटक-पटक कर बेहोश हो गया। शोर से उसके स्नायु में विकृति उत्पन्न हो गयी थी।

शोर न केवल कानों के लिये खतरनाक है, अपितु उससे कहीं अधिक मानसिक विकृतियों का भी जनक है। शोर से शारीरिक रोग भी हो जाता है। शोर से उत्पन्न मानसिक या अन्य शारीरिक रोगों की चिकित्सा सरल नहीं है।

जर्मनी के सैनिक अधिकारियों ने द्वितीय विश्व युद्ध में शोर का उपयोग अस्त्र के रूप में किया था। शत्रु को चारों तरफ से घेर कर इतना शोर किया गया कि शत्रु के सैनिकों के बिना युद्ध के आत्मसमर्पण कर दिया था।

शोर के प्रभाव का परीक्षण एक कमरे में बंद चूहों पर किया गया। 50 डेसीबल के शोर में चूहे उछल-कूद करते रहे। 120 डेसीबल पर इधर-उधर दौड़ने लगे। 150 डेसीबल के शोर में वे फर्श पर उछलने और 175 डेसीबल का शोर उनके लिये असहनीय हो गया, जिससे वे मर गये।

छोटे कस्बाई शहरों या होटलों के हर्द-गिर्द की पान-दुकानों में भड़कदार गानों का कड़कदार टेप चलता रहता है। कोटा, आगरा जैसे शहरों में तो गन्ने का रस बेचने वाले तक लाउडस्पीकरों पर इतना शोर करते है कि आसपास की कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ती। यदि ऐसी चार-पांच दुकानों पर भी लाउडस्पीकरों की आवाजें गूंजती रहें तो वहां रहने वालों की स्थिति क्या होगी –

यह सहज ही सोचा जा सकती है। बसों, टैक्सियों में भी अब वीडियो कैसेट या आडियो कैसेट की आवाज कान फाड़ने लगी हैं।

ऐसी अनावश्यक आवाजों के विरुद्ध शिकायत की भी जाये तो किससे?

शोरगुलपूर्ण वातावरण में लगातार रहते-रहते स्वास्थ्य पर जो बुरा असर पड़ता है, उससे बचना निहायत ही जरूरी है। इसके लिये शोरगुल के वातावरण से कुछ दिनों के लिये दूर जाकर भी शांति महसूस की जा सकती है।

**शोर को कम करने के उपाय**

लेकिन शोर से पलायन शोर का निराकरण नहीं है। शोर उत्पन्न ही न हो - इसका प्रयास किया जाना चाहिये और उत्पन्न शोर के प्रभाव को कम से कम किये जाने का भी प्रयास किया जाना चाहिये। शोर के खिलाफ हमारे देश में अभी जागरूकता नहीं आ पायी है। शोर या अन्य प्रदूषण को दैनिक जीवन की आवश्यक मजबूरी मान कर छोड़ देने से काम नहीं चल सकता। इसके लिये प्रयास की जरूरत है। शोर को हम निम्नलिखित उपायों द्वारा कम कर सकते हैं :-

1. संगीत या वाद्य यंत्रों, रेडियो, ट्रांजीस्टर, दूरदर्शन, टेप आदि को मधुर एवं धीमी गति में सुनना।
2. ध्वनि प्रदूषक वाहनों में साइलेंसर का उपयोग किया जाना।
3. वाहनों में हार्न के अनावश्यक उपयोग पर रोक लगाना।
4. वाहनों में तेज और कर्कश आवाज वाला हार्न नहीं लगाना।
5. सड़क पर किनारे की ओर चलना, ताकि हटाने के लिये पीछे से जा रहे वाहनों को अनावश्यक हार्न नहीं बजाना पड़े।
6. कल-कारखानों में तेज ध्वनि उत्पन्न करने वाले यंत्रों को ऐसी जगह लगाया जाना, जहां कर्मचारी कम देर तक काम करते हों या जहां काम नहीं होता हो।
7. ध्वनि - प्रदूषक यंत्रों के पास कार्यरत कर्मचारियों द्वारा कानों को तौलिये आदि से बंद करके रखना।
8. ध्वनि प्रदूषक के बीच कार्यरत कर्मचारियों की पारी बदलते रहना।
9. ध्वनि उत्पादक यंत्रों को ध्वनिशोधक दीवारों के बीच रखना।
10. 100 डेसीबल से अधिक ध्वनि कर्मचारियों के कानों तक नहीं पहुंच पाने की व्यवस्था करना।
11. पेड़-पौधे ध्वनि-प्रदूषण को अवशोषित कर लेते हैं। इसलिये ध्वनि प्रदूषण को कम करने के लिये अधिकाधिक पेड़-पौधे लगाना।
12. लाउडस्पीकरों के प्रयोग पर नियंत्रण लगाना और धार्मिक स्थलों पर इनके प्रयोग को वर्जित करना।
13. दीवारों को हरे या नीले रंग से रंगना और खिड़की-दरवाजों पर मोटे पर्दे लगाना।
14. मकान की ईंटें मोटी रखना - जहां अत्यधिक शोरपूर्ण वातावरण में रहने की मजबूरी हो, वहां कच्ची मिट्टी की मोटी दीवारों वाले मकानों का निर्माण करना।
15. ध्वनि प्रदूषण को दंडनीय अपराध बनाना।

शोर के विरुद्ध आवाज उठाने की आवश्यकता है। इसके लिये विभिन्न प्रचार माध्यमों का उपयोग कर जनचेतना जागृत की जा सकती है। शैक्षणिक संस्थानों में भी इसकी शिक्षा दी जानी चाहिये। इससे लोग स्वयं भी ध्वनि-प्रदूषण को कम करने के लिये सोच सकेंगे।

**सी/204, लोमर हिनू,**
**रांची - 834002**

# आदिवासी अर्थ व्यवस्था - विशेषताएं और समस्याएं

डॉ. अधिकेश राय
सहायक प्राध्यापक, वाणिज्यिक विभाग,
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर, म० प्र०

भारत की जनसंख्या में आदिवासी समुदाय का विशेष स्थान है, किंतु देश के आर्थिक विकास में उनका विशेष योगदान नहीं है। ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में आज आदिवासियों की जो स्थिति बनी हुई है उसे देखकर कहा जा सकता है कि आदिवासी समुदाय आज भी सम्पन्न और शक्तिशाली वर्ग के दबाव में जी रहा है। आदिवासी समुदाय का एक बड़ा भाग आज भी गरीबी रेखा से नीचे रहकर अपने अस्तित्व के लिए जूझ रहा है। आज आदिवासी समाज जितनी पिछड़ी स्थिति में है उतना समाज का कोई भी वर्ग नहीं है। चाहे वह सामाजिक, आर्थिक या कोई भी दृष्टिकोण हो, आदिवासी समुदाय आज भी सैकड़ों वर्ष पुराना जीवन जी रहा है। उसके रहन-सहन, बोलचाल, जीवन-स्तर में परिवर्तन बिलकुल नहीं के बराबर हुआ है।

भारत में छह करोड़ आदिवासी हैं। देश की संपूर्ण आदिवासी आबादी का एक चौथाई मध्य प्रदेश में निवास करता है। वर्ष 1991 की जनगणना में मध्य प्रदेश में 1.75 करोड़ आदिवासी आबादी थी। मध्य प्रदेश का आदिवासी परिदृश्य अनेक अर्थों में बहुरंगी और महत्वपूर्ण हैं। मध्य प्रदेश में करीब 40 जनजातियां निवास करती हैं। वे प्रदेश के सुदूर इलाकों में बसी हैं। आबादी के लिहाज से झाबुआ मध्य प्रदेश का सबसे बड़ा आदिवासी जिला है। गोंड़ इस प्रदेश की सबसे बड़ी जनजाति है। दूसरे नम्बर पर भील हैं। इसके अतिरिक्त प्रदेश में कोरकू, मुड़िया, उराव, शहरिया, हल्का, भतरा, कमार, कोरवां, कोल, डोरला, करकार, कंवर, धनका आदि जातियां बसी हैं।

आदिवासी हमारे समाज का सबसे शोषित और दलित वर्ग है। निःसंदेह भारत के स्वतंत्र नागरिक के रूप में उनके भी समान अधिकार हैं। परंतु व्यावहारिक दृष्टि से वे हर प्रकार के भेदभाव का सामना कर रहे हैं। उनकी सामाजिक परिस्थिति ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत ही निम्न है और आर्थिक दृष्टि से भी वे अभी भी हमारे समाज के सबसे अधिक कमजोर स्तर पर हैं। उनमें से अधिकांश भूमिहीन मजदूर, छोटे किसान, पशुपालक के रूप में काम करते हैं। उनकी आवास स्थिति अत्यन्त घटिया है और शैक्षणिक स्थिति बहुत खराब है।

आदिवासियों की आय के जितने साधन हैं उनसे मात्र उनकी भूख शांत हो सकती है। उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हेतु ऐसी योजनाएं चलाई जानी चाहिए जिससे इनको बारह माह काम मिल सके। सरकार द्वारा आदिवासियों के कल्याण के लिए राशि आदिम जाति कल्याण विभाग और अन्य विभागों को प्राप्त होती है, आदिवासियों के विकास पर वह पूरी राशि खर्च नहीं की जाती और उसका अधिकांश हिस्सा शासन को लौटा दिया जाता है। इसका मुख्य कारण आदिवासियों को आदिवासी कल्याण योजनाओं की जानकारी न होना है।

वर्तमान समय में समाज में वे चीजें जो हम लोगों के जीवन जीने का एक हिस्सा बन चुकी है उन को आदिवासी वर्ग अपने त्यौहारों और अन्य विशेष अवसरों पर ही बड़ी मुश्किल से उपलब्ध कर पाता है। चाय जो हमारे जीवन का एक अनिवार्य अंग बन चुकी है, वह भी आदिवासियों को नसीब नहीं है। जब वे शहर या किसी मेले आदि में जाते हैं तब चाय पीते हैं। उनके दैनिक भोजन की कौन कहे उनके त्यौहार आदि का भोजन भी बहुत ही निम्न होता है। आदिवासी लोग दैनिक भोजन के रूप में दोपहर में ज्वार की रोटी, नमक मिर्ची के साथ और रात्रि के भोजन में कोदों का भात या ज्वार का पेजा पीते हैं। विशेष उत्सव या अवसरों पर ये लोग मांस आदि बनाते हैं। इस सबका कारण है कि इनके कमाई के स्रोत नहीं के बराबर हैं।

इसी प्रकार आदिवासियों के रहन-सहन का स्तर हर तरह से निम्न है। पुरुष केवल एक पर्दनी (धोती) से काम चला लेते हैं। आदिवासी महिलाएं भी अपने पूरे शरीर को एक ही धोती से ढक लेती हैं। इनकी झोपड़ी घास-फूस की बनी होती है जिसमें सर्दी, गर्मी, बरसात का मौसम काटना कोई सरल कार्य नहीं है। सामाजिक रीति-रिवाज आदि के बारे में आदिवासियों की स्थिति

दकियानूसी विचारधारा से प्रभावित है। इनके सामाजिक रीति-रिवाजों की रस्में खर्चीली होती हैं। यदि कोई व्यक्ति सामाजिक बंधन के नियम को तोड़ता है तो उसे अर्थदंड के साथ पूरे समाज को भोजन आदि देना पड़ता है।

आदिवासियों का जीवन सभ्य, सुसंस्कृत और विकसित कही जाने वाली दुनिया से दूर जंगलों और बीहड़ों में व्यतीत होता है। आदिवासियों की दुनिया ऐसी है जहां पर सामान्य व्यक्ति की पहुंच मुश्किल है। कई ऐसे आदिवासी क्षेत्र हैं जहां विज्ञान भी नहीं पहुंच पाया है। जहां सिर्फ पैदल, पहाड़, घने जंगलों पर चढ़ते-उतरते तमाम दिक्कतों को सहते हुए ही पहुंचा जा सकता है। दूर-दराज क्षेत्रों में रहने के कारण प्रकृति ने आदिवासियों को बाहरी दुनिया से अलग-थलग कर दिया है। उनका किसी से संपर्क नहीं है। आज जहां विज्ञान मंगल ग्रह पर पहुंच गया है वहीं आदिवासी मीलों दूरी अपने पैरों से चलकर तय करते हैं। उन्हें एक साइकिल भी नसीब नहीं है।

आदिवासियों के जीवन स्तर को बेहतर बनाने के लिए जहां अनेक प्रयास किये जा रहे हैं वहां कुछ सामाजिक कार्यकर्ता ऐसे भी हैं जो उनके विकास की बातें तो करते हैं किंतु उनकी कोशिश यही रहती है कि ये लोग आदिवासी परिवेश में ही रहें, उसमें कोई परिवर्तन न हो और शिक्षित लोगों के आकर्षण का केन्द्र बने रहें जिससे कि उनके पर्यटन का व्यापार फलता फूलता रहे। ये वनपुत्र क्या जाने कि किस रूप में पेश कर उन्हें अजूबा बनाकर उसका मखौल उड़ाया जा रहा है।

अतः इनके विकास के लिए आवश्यक है कि इन्हें राष्ट्रीय विचारधारा से जोड़ा जाए और उनका सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास किया जाए।

---

(पृष्ठ 37 का शेष)

के पश्चिमी भाग में लूनी नदी की बाढ़ से 1979 और 1990 में लोगों ने दो-तीन रातें खेजड़ी पर बितायीं और पानी का बहाव कम होने पर नीचे उतरे जबकि अन्य पेड़ तेज बहाव के कारण धराशायी हो चुके थे।

इस वृक्ष से फरवरी और मार्च के महीनों में जो गोंद रिसता है वह न केवल स्वादिष्ट बल्कि पौष्टिक भी होता है। बच्चे के जन्म के अवसर पर महिलाएं इस गोंद का उपयोग करती हैं।

खेजड़ी भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने में भी सक्षम है। किसान यदि खेजड़ी के बीज अपने खेतों में बोयें तो सूखे की समस्या के निराकरण के साथ ही किसानों को आत्म-निर्भरता प्राप्त करने में भी मदद मिलेगी। मरुस्थल के एक हेक्टेयर क्षेत्र में लगभग 30-40 पेड़ मिलते हैं। किसान यदि सतर्कतापूर्ण इसकी खेती करें तथा 12 मीटर की पंक्तियों में पेड़ से पेड़ लगायें तो वे हर वर्ष 2500 रुपये की अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते हैं। खेजड़ी की खेती किसी भी अवस्था में नकदी फसल के मुकाबले अलाभकारी सिद्ध नहीं होगी।

587, कमला नेहरू नगर,
एक्सटेंशन थर्ड, जोधपुर - 342009

# लेखकों से

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, कविता, संस्मरण, लघुकथा, आदि रचनाएं टाइप करवाकर दो प्रतियों में भेजिये। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न नहीं होगा। उन्हें स्वीकार करना संभव नहीं होगा। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा अपना पता लिखा लिफाफा लगाना न भूलें। सभी रचनाएं संपादक, 'कुरुक्षेत्र', 467, कृषि भवन, नई दिल्ली - 110001 के पते पर भेजें।

# ऊसर भूमि में भी मछली पालन सम्भव

✍ डा० अमरेश चन्द्र पाण्डेय
सह प्राध्यापक (मत्स्य), मत्स्य विज्ञान विभाग,
नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज
फैजाबाद–224229

हमारे देश में लगभग 70 लाख हेक्टेयर भूमि ऊसर समस्या से ग्रसित है। रासायनिक संरचना के अनुसार ऊसर भूमि तीन प्रकार की होती है। क्षारीय भूमि अधिकांशतः शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में पाई जाती है। इस प्रकार की अधिकांश मृदा उत्तर प्रदेश, पंजाब व हरियाणा में पाई जाती है। लवणीय भूमि अधिकतर समुद्रतटीय क्षेत्रों में मिलती है, इसमें से सर्वाधिक क्षेत्र पश्चिम बंगाल में है। लवणयुक्त-क्षारीय भूमि पूरे देश में फैली हुई है। नाबार्ड के एक सर्वेक्षण के अनुसार उत्तर प्रदेश के पूर्वी जनपदों में ऊसर मृदा का क्षेत्रफल लगभग 2.46 लाख हेक्टेयर है। ऊसर समस्या से ग्रस्त मृदाओं को अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग नाम से जैसे उत्तर प्रदेश में रेह, रेहाला या ऊसर तथा पंजाब, हरियाणा में कल्लर आदि नाम से जाना जाता है।

निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए खाद्यान्न के अलावा मछली आदि के अधिकाधिक उत्पादन की भी आवश्यकता है। आने वाले वर्षों में इसके लिए प्रति एकड़ उपज बढ़ाना, अधिक भूमि को सिंचाई युक्त करना, व्यर्थ बंजर तथा ऊसर पड़ी भूमि को कृषि, मत्स्य पालन, बागवानी के अधीन लाना मुख्य उपाय हो सकते हैं। प्रस्तुत लेख में ऊसर भूमि से संबंधित आवश्यक ज्ञान तथा इस को मछली पालन योग्य बनाने की विधि दी गई है।

## ऊसर भूमि के प्रकार

ऊसर भूमि की संरचना और उपस्थित लवण पदार्थों के रासायनिक गुणों के आधार पर मृदा को तीन प्रमुख श्रेणियों में विभक्त किया जाता है:

**लवणीय मृदा :** इस प्रकार की भूमि की ऊपरी सतह पर घुलनशील लवणों की श्वेत परत इकट्ठी हो जाती है, इसीलिए इसे श्वेत ऊसर भी कहते हैं। इसमें कैल्शियम, मैग्निशियम के क्लोराइड और सल्फेट लवणों की अधिकता होती है। इन लवणों के उदासीन होने के कारण इस प्रकार की मृदा का समूअंक 8.5 या कम होता है।

**क्षारीय मृदा :** मृदा मे उपस्थित क्षारीय लवण और जैविक पदार्थ घुलनशील होने के कारण कालान्तर में ऊपरी सतह पर काले-भूरे रंग की परत के रूप में जमा हो जाते हैं, इसलिए इसे काली ऊसर भी कहते हैं। इसमें सोडियम/कैल्शियम/मैग्निशियम के कार्बोनेट्स और बाईकार्बोनेट्स प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। समूअंक 8.5 से लेकर 10.5 या अधिक भी हो सकता है।

**लवणीय-क्षारीय मृदा :** इसमें दोनों प्रकार की ऊसर मृदाओं के मिले-जुले गुण पाये जाते हैं। इस प्रकार के ऊसर में सोडियम/कैल्शियम/मैग्निशियम के कार्बोनेट्स और बाईकार्बोनेट्स, क्लोराईड्स तथा सल्फेट्स पाये जाते हैं। समूअंक 8.5-10.5 के लगभग होता है।

## ऊसर मृदा बनने के कारण

**शुष्क जलवायु :** ऐसे क्षेत्रों में जहां वर्षा कम होती है तथा तापमान अधिक होता है, विलयशील लवण मृदा के ऊपरी सतह पर संचित होते रहते हैं।

**लवणीय जल से सिंचाई :** यदि लवण/क्षारीय जल से अधिक समय तक सिंचाई की जाए तो कालांतर में सिंचित भूमि ऊसरीली हो जाती है।

**जल निकास की कमी :** जल निकासी की व्यवस्था न होने के कारण आस-पास का जल निचले स्थानों पर एकत्रित हो जाता है तथा सूखने के बाद अपने साथ लाए विलयशील लवणों को यहीं छोड़ जाता है। इस निरंतर क्रम के चलते लवणों की अधिकता हो जाती है।

**उच्च भौम-जल स्तर :** भूमि के अंदर जल का स्तर भूमि के निकट होने के कारण समुचित जल निकास नहीं हो पाता है तथा घुलनशील लवण/क्षार भूमि की ऊपरी सतह पर जमा हो जाते हैं। इस प्रकार के क्षेत्र नदी, नहर या जलाशय के समीप मिलते हैं।

**अन्दर में कड़ी परत का होना :** भूमि के अंदर कड़ी परत होने के कारण जल निचली तहों तक नहीं पहुंच पाता है। इस कारण भी

घुलनशील लवण/क्षार मृदा की ऊपरी सतह पर एकत्रित हो जाते हैं।

## ऊसर भूमि में मछली पालन कैसे करें ?

ऊसर मृदा का समूअंक एवं लवण की मात्रा बहुत अधिक होने के कारण इस प्रकार की भूमि मत्स्य पालन के लिए उपयुक्त नहीं होती है। साथ ही साथ इस प्रकार की मृदा में जल-रिसाव की भी गहन समस्या होती है। हमारे विभाग के मत्स्य-प्रक्षेत्र में स्थित तालाबों की मृदा भी ऊसरीली है, जिसके गुण निम्न प्रकार हैं:-

| | |
|---|---|
| क. मिट्टी का प्रकार | सिल्ट दोमट |
| ख. समूअंक | 9.5-10.5 |
| ग. नत्रजन | 7.0-8.0 मि. ग्रा./100 ग्रा. मृदा |
| घ. फास्फोरस | 2.5-3.0 मि. ग्रा./100 ग्रा. मृदा |
| ङ. विनिमयशील कैल्शियम | 4.0-8.0 मि. ग्रा./100 ग्रा. मृदा |
| च. कार्बनिक कार्बन | 0.15-0.20 प्रतिशत |
| छ. जल अंतः श्रवण की दर | 0.21 मी. मी./घंटा |

उपरोक्त भूमि में निम्न विधि से सुधार करके सफलतापूर्वक मत्स्य पालन किया जा रहा है :

1. भूमि की ऊपरी परत की लगभग 15 से. मी. मृदा को हटा देना चाहिए क्योंकि इसमें रेह तथा लवण की मात्रा अधिकतम होती है।
2. चार से छह फीट की खुदाई के उपरांत बड़े कंकड़ की तह मिलने पर उसे तोड़ना नहीं चाहिए, खुदाई का कार्य रोक देना चाहिए। इस कंकड़ की तह को यदि तोड़ दिया गया तो जल-रिसाव को नियंत्रित करना कठिन हो जायेगा।
3. कंकड़ की तह के ऊपर लगभग 30 से. मी. मोटी मिट्टी की परत छोड़ देनी चाहिए तथा मिट्टी को भलीभांति पिटाई करके दबा देना चाहिए।
4. लगभग 30 से. मी. जल भर कर कई बार पलेवा कर देना चाहिए। इसके बाद 15000 कि. ग्रा./हे. की दर से गोबर या बायो गैस संयंत्र की स्लरी फैला कर के एक मीटर जल भर कर 15-20 दिनों के लिए छोड़ देना चाहिए।
5. ऊसर भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए पाइराईट का प्रयोग करने की सिफारिश की जाती है। परंतु मछली पालन वाले तालाबों में इस का प्रयोग करने से कोई विशेष लाभ नहीं मिलता है, वरन पाइराईट प्रयोग के पश्चात अवक्षेपित लवण को तालाब से बाहर निकालने में कठिनाई होती है। अतः तालाबों में पाइराईट का प्रयोग न करने की सिफारिश की गई है।
6. गोबर या स्लरी डालने तथा एक मीटर जल भरने के 2-3 सप्ताह के बाद तालाब में मछलियों के प्राकृतिक सूक्ष्म भोज्य पदार्थ या प्लवक पैदा हो जाते हैं, जिनसे जल का रंग हल्का नीला या हरा हो जाता है। अब इस तालाब मे 5000-6000 अंगुलिकाएं प्रति हेक्टेयर की दर से संचित करनी चाहिए। जल-स्तर 1.0 से 1.5 मीटर तक बनाये रखना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर नलकूप, कुएं, नहर, जलाशय आदि से जल लेकर तालाब में भर देना चाहिए। कालान्तर में धीरे-धीरे समूअंक तथा जल-रिसाव कम हो जाता है।
7. मछलियों को नित्य प्रातःकाल कृत्रिम आहार देना चाहिए, जिससे मछलियां शीघ्रता से बढ़ेंगी। कृत्रिम भोजन की कुल मात्रा प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठम, सप्तम, अष्ठम, नवम, दशम माह में क्रमशः 4, 5, 6, 8, 10, 12, 14, 16, 18, 20 किलो रखनी चाहिए। चावल कन्नी और सरसों या मूंगफली की खली को भार से बराबर-बराबर मात्रा में सान कर तालाब में कई स्थान पर रख देना चाहिए। मछलियां आकर इस भोजन को ग्रहण कर लेती हैं।

उपरोक्त विधि से कृषि, बागवानी आदि कार्यों के लिए अनुपयुक्त बेकार पड़ी ऊसर भूमि को मत्स्य पालन हेतु उपयोग करके भोजन समस्या के समाधान के साथ-साथ अतिरिक्त आय भी की जा सकती है। विभिन्न प्रायोजित प्रदर्शन परिणामों से यह स्पष्ट हो चुका है कि धान-गेहूं फसल चक्र के स्थान पर मत्स्य पालन से प्रति हेक्टेयर अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

# पुस्तक-समीक्षा

**डाइबिटीज : बचाव और उपचार; लेखक-डा. यतीश अग्रवाल, प्रकाशक - आर्य बुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली - 110005, पृष्ठ - 124; मूल्य - 30 रुपया।**

हिन्दी में विज्ञान, टेक्नोलाजी, चिकित्सा आदि विषयों पर मौलिक रूप से लिखनेवालों की बड़ी कमी है। हर साल इस तरह की जो पुस्तकें प्रकाशित होती हैं उनकी संख्या उंगलियों में गिनने लायक ही होती है। इसलिए डा. यतीश अग्रवाल की 'डाइबिटीजः बचाव और उपचार' निश्चय ही एक सराहनीय प्रयास कहा जा सकता है। डाक्टर अग्रवाल का नाम हिन्दी के पाठकों के लिए नया नहीं है। पत्र-पत्रिकाओं में चिकित्सा विज्ञान संबंधी विषयों पर उनके लेख प्रकाशित होते ही रहते हैं। डाइबिटीज पर उनकी यह पुस्तक आम आदमी के लिए काफी उपयोगी सिद्ध होगी।

अक्सर देखा गया है कि बीमारियों के बारे में लोगों को सही-सही जानकारी नहीं होती। कई बीमारियों के बारे में तो समाज में गलत और भ्रामक धारणाएं भी व्याप्त रहती हैं। नतीजा यह होता है कि रोगी इलाज में डाक्टरों के साथ सहयोग नहीं कर पाते। अनेक लोग नीम-हकीमों के चक्कर में पड़कर ठीक होने के बजाय गंभीर रोग के शिकार हो जाते हैं। मधुमेह यानी डाइबिटीज के बारे में भी ये सब बातें लागू होती हैं। हालांकि इस बीमारी का जिक्र आयुर्वेद के हमारे प्राचीन ग्रंथों में मिलता है मगर इसके बारे में कई तरह की गलतफहमियां लोगों में हैं। सच तो यह है कि डाइबिटीज के अधिकतर मामलों में यह बीमारी एक तरह की विकलांगता के रूप में होती है। डाइबिटीज एक ऐसी विकलांगता है जिसमें शरीर की एक ग्रंथि—पैंक्रियाज—रक्त में ग्लूकोज की मात्रा का नियंत्रण करने वाला इंसुलिन हार्मोन बनाना बंद कर देती है। यही डाइबिटीज रोग है। लेकिन रोगियों को यह बात साफ तौर पर बता दी जानी चाहिए कि पैंक्रियाज में इंसुलिन न बनने या कम करने के बावजूद रोगी अगर कुछ एहतियात बरते तो आसानी से सामान्य जीवन बिता सकते हैं। डाक्टर अग्रवाल ने अपनी इस पुस्तक में मधुमेह रोगियों को यही सब बताने की कोशिश की है। अगर रोगी इस पुस्तक में बतायी गयी बातों पर अमल करें तो रोग के गंभीर रूप धारण करने की नौबत नहीं आएगी।

पुस्तक में डाइबिटीज के कारण, लक्षण, निदान, उपचार आदि के साथ-साथ रोगियों के लिए सावधानियां, बच्चों तथा गर्भवती महिलाओं में मधुमेह, मधुमेह रोग और यौन-जीवन तथा इस रोग के बारे में सामान्य जिज्ञासाओं के समाधान भी दिये गये हैं। पुस्तक के अंत में देश में मधुमेह रोग के उपचार में लगी कुछ प्रमुख संस्थाओं की जानकारी भी दी गयी है।

पुस्तक की भाषा सरल और आम आदमी के समझ में आने योग्य है। हालांकि चिकित्सा विज्ञान संबंधी अंग्रेजी शब्दों का खुलकर इस्तेमाल किया गया है लेकिन यह एक तरह से उचित ही है क्योंकि अगर इनके लिए हिन्दी शब्दावली का उपयोग होता तो यह पुस्तक इतनी बोधगम्य नहीं रहती।

मुद्रण की दृष्टि से भी यह पुस्तक सराहनीय है। चिकित्सा विज्ञान जैसे विषय में हिन्दी में प्रकाशित पुस्तकों में अक्सर मुद्रण तथा प्रूफ की काफी गलतियां पायी जाती हैं। यह पुस्तक इस दृष्टि से अपवाद है।

कागज, स्याही तथा अन्य वस्तुओं की कीमतों को ध्यान में रखते हुए पुस्तक का मूल्य अधिक नहीं कहा जा सकता। लेकिन अगर किसी भी तरह इसकी कीमत कुछ कम की जा सकती तो और अधिक लोग इसे खरीद कर इसका फायदा उठा सकते।

**राजेन्द्र उपाध्याय**
**बी-1/1388, वसंत कुंज,**
**नई दिल्ली - 110070**

**कुरुक्षेत्र मंगाने का पताः**

**व्यापार व्यवस्थापक**
**प्रकाशन विभाग**
**पटियाला हाउस**
**नई दिल्ली - 110001**

## ग्रामीण गृह निर्माण की नई योजना

सरकार ने गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे कमजोर वर्गों के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में घर बनाने के लिए राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रयासों में सहायता के लिए एक योजना मंजूर की है। इस योजना के तहत बिहार, गुजरात, उड़ीसा, त्रिपुरा और राजस्थान को 1993-94 के लिए 11 करोड़ रुपये दिए गए। 1994-95 के दौरान 30 करोड़ रुपये का बजट प्रावधान किया गया है। आठवीं योजना में इसके लिए 350 करोड़ रुपये आबंटित किए गए हैं।

केन्द्र सरकार गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे लोगों के लिए ग्रामीण गृह निर्माण कार्यक्रम के तहत स्थान, मकानों की मरम्मत और नया मकान बनाने के लिए धन देगी।

लाभार्थियों को मकान के स्थान के विकास और अन्य आवश्यक सेवाओं के लिए 2700 रुपये, घरों की मरम्मत के लिए 6000 रुपये और नए मकानों के निर्माण के लिए 12000 रुपये दिए जायेंगे। इसमें स्वच्छ शौचालय, धुआंरहित चूल्हा, जल-मल निकासी और अन्य आवश्यक नागरिक सुविधाओं के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

वर्तमान योजना के मापदंडों से ही केन्द्रीय सब्सिडी की मात्रा का निर्धारण होगा। सब्सिडी में केंद्र का हिस्सा मरम्मत और नए मकानों के निर्माण पर खर्च या राज्य की सब्सिडी जो भी कम हो, के 45 प्रतिशत तक ही सीमित होगा। मकानों की मरम्मत और नए मकानों के निर्माण के लिए लाभार्थियों से कुल लागत के न्यूनतम 10 प्रतिशत तक खर्च करने को कहा जाएगा।

गृह निर्माण के लिए केन्द्रीय नमूने या डिजाइन पर जोर नहीं दिया जाएगा। स्थानीय और परखी हुई सामग्री, डिजाइन और तकनीक को ही यथासंभव प्रोत्साहित किया जाएगा।

1991 की जनगणना के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में 1.37 करोड़ मकानों की कमी है और 3.37 करोड़ कच्चे मकानों में सुधार की जरूरत है। इसलिए गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे परिवारों को ग्रामीण गृह निर्माण में शामिल करने की गति को तेज करना आवश्यक है।

**साभार : पत्र सूचना कार्यालय**

डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/94
पूर्व भुगतान के बिना डी. पी. एस. ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

P & T Regd. No. D (DL) 12057/94
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली - 110001 द्वारा प्रकाशित और आकाशदीप प्रिन्टर्स, नई दिल्ली - 110002 द्वारा मुद्रित